बाबू मथुराप्रसाद शिवहरे के प्रबन्ध से
दि फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर में मुद्रित.

गुलाब वीर ग्रन्थमाला रत्न ३रा

S. B. 209

॥ श्री जिनेन्द्राय नमः ॥

कर्त्तव्य-कौमुदी

प्रथम भाग

252

हिन्दी पद्यानुवाद सहित

मूलकर्त्ता

भारतभूषण शतावधानी पं० मुनि श्री रत्नचंद्रजी महाराज

पद्यानुवादक

पं० मूलचन्दजी वत्सल

प्रकाशक

जैन साहित्य प्रचारक समिति, अजमेर, ब्यावर

प्रथमावृत्ति १०००

वीर सं० २४६५

वि० सं० १९९६

मूल्य ।)

धन्यवाद

इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय श्री अजमेर निवासी श्रीयुत मूलचन्द्रजी शेठी व भँवरलालजी नाहर को ही है। क्योंकि आप दोनों महाशयों ने जैन साहित्य प्रचारक समिति के आजीवन सभासद बन करके इस पुस्तक-प्रकाशन में उचित सहायता प्रदान की है। अतएव इस दानशीलता के लिये आपको शतशः धन्यवाद है।

निवेदक—

धीरजलाल केशवलाल तुरखिआ

मंत्री, जैन साहित्य प्रचारक समिति.

कर्त्तव्य-कौमुदी
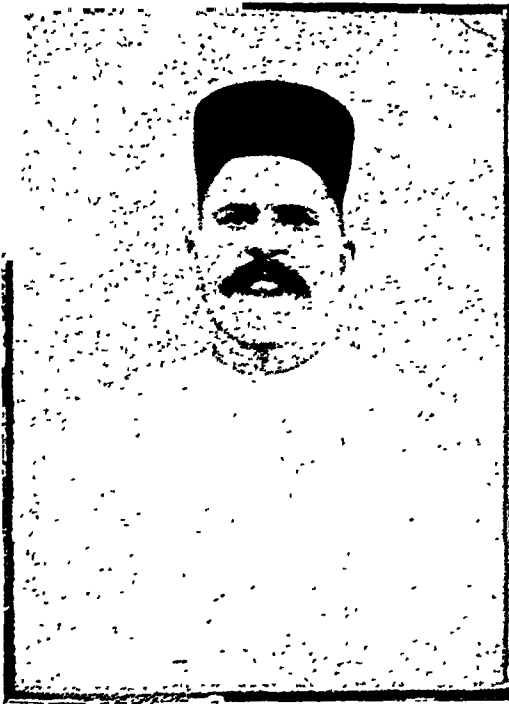
श्रीमान् सेठ पन्नालालजी भंवरलालजी
नाहर अजमेर ।

भूमिका

हमारे लिए आज यह एक महान् गौरव का विषय है जो हमें शतावधानी, महामुनि विद्वद्वरेण्य प्रभावशाली विद्वान् द्वारा रचित काव्य पर प्रकाश डालने तथा भूमिका लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह कार्य किसी उद्भट विद्वान् के योग्य था। मुझ सदृश अल्पशक्तिशाली व्यक्ति के लिए यह कार्य चिउंटी को हिमाचल पर चढ़ने के समान है। लेकिन जब हम देखते हैं कि चिउंटी भी उस महान् कार्य को करने में उत्साह और साहस का अव्वल नम्बर लेकर सफल मनोरथ होती है तो पुनः मनुष्य को किस कारण निरुत्साह और साहसहीन बन कर अकर्मण्य बनना चाहिए? इसी आन्तरिक तत्त्वज्ञान की प्रेरणा से प्रेरित होकर अपनी योग्यता के अनुसार पाठकों को इस काव्य का दिग्दर्शन मात्र कराने के लिए प्रयत्न करते हैं।

इस काव्य का विषय और निर्माण करने का उद्देश्य क्या है? इस विषय पर लेखनी उठाने के पूर्व उस त्यागी और महान् आत्मा का संक्षिप्त जीवन-चरित्र चित्रित कर देना हमारे पाठकों के लिए अत्यन्त लाभदायक होगा। क्योंकि कृति की महत्ता ग्रन्थ रचयिता की महत्ता, उसकी विद्वत्ता और गुणशीलता पर निर्भर है।

हमारे चरित्रनायक ने कच्छ जैसी पुण्य भूमि में भोरारा ग्राम में वैशाख शुक्ला १२ शुक्रवार वि० संवत् १९३६ को ओसवाल जैन जाति में श्रीमती लक्ष्मीबाई की कुक्षि से जन्म धारण किया है और आपके पूज्य पिता श्रीमान् वीरपाल भाई ने आपको "रत्न-चन्द्र" के शुभ नाम से अलंकृत किया। पिताश्री ने आपको जन्म

से ही शुभ लक्षणों द्वारा रत्न (श्रेष्ठ) समझ कर आपका 'रत्न' नाम निर्देश किया था। आपने भी अपने पिताश्री के उस रत्न नाम को अपूर्व विद्याभ्यास त्यागवृत्ति और जनतादि के उपकाररूपी शाण पर चढ़ा कर उसे संसार में चमका दिया। आज आप ओसवाल ज़ाति के ही रत्न नहीं रहे, किन्तु भारतवर्ष के लाड़ले रत्नों में से एक अपूर्व चमकते हुए रत्न गाने जाने लगे हैं।

आप बाल्यावस्था में गुजराती की ५-७ पुस्तकें पढ़ कर अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ व्यापार करने लग गये, किन्तु एक महान् आत्मा जिससे भविष्य में भारत का बड़ा भारी हित होने वाला है, जो अपने पाण्डित्य और त्याग के प्रखर प्रकाश द्वारा चिरकाल से सोई हुई समाज में चैतन्य का संचार करने वाले हैं, वह संसार के दलदल में कैसे फंस सकते थे। यद्यपि हमारे चरित्रनायक को सामाजिक रूढ़ि के अनुसार १३ वर्ष की उम्र में संसारी बनना पड़ा था, तथापि तीन वर्ष के पश्चात् ही आपको धर्मपत्नी का वियोग हो गया। बस, यहाँ से ही आपके जीवन नाटक के पट का परिवर्त्तन हुआ। आपने समस्त संसार के धन्धों को छोड़ कर संसार के मोहपाश का छेदन कर अपने माता-पिता की आज्ञा ले कर संयम ग्रहण कर लिया और वि० संवत् १९५३ में पूज्यपाद श्री १००८ श्री गुलाबचन्द्रजी महाराजश्री के समीप मुनि दीक्षा अङ्गीकार कर ली। बारह वर्ष पर्यन्त आपने संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, हिन्दी, इंगलिश आदि भाषाओं का यथेष्ट अध्ययन किया। व्याकरण, न्याय काव्य अलङ्कार नाटक आदि का विशेष रूप से अनुभव प्राप्त करके जैनदर्शन, सांख्य, वेदान्तादि अनेक सिद्धान्तों का बड़ी उत्सुकता से तुलनात्मक दृष्टि से दृढ़ परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया। आपके योग्य गुरु पूज्य श्री गुलाबचन्द्रजी महाराज ने "होनहार विरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत को आपके देदीप्यमान जीवन में जब

साक्षात् देखा तो आपकी आत्मा में अविकसित शक्तियों का विकास तथा व्याख्यानकला और अवधान की क्रियाओं में निष्णात करने लगे। थोड़े ही समय में आपका गुण-सौरभ महकने लगा और साधु सम्मेलन में तो वह अत्यन्त प्रख्यात हो गया। वम्बई, अहमदाबाद, भावनगर, पोरबन्दर, लिंबड़ी, वांकानेर, जयपुर, अलवर, दिल्ली, पटियाला, आगरा आदि प्रसिद्ध नगरों में आपके चमत्कारी अवधान और स्मरणशक्ति का अद्भुत विकास देख कर बड़े २ विद्वान, साधु और महात्मा आश्चर्य चकित हो गये और जनता ने आपको 'शतावधानी' भारतरत्न, भारतभूषण, विद्यावारिधि की पदवियों से विभूषित किया।

इतना ही नहीं किन्तु आपने अपने अमूल्य समय में जिन २ अपूर्व ग्रन्थों का निर्माण किया है, उनका नामोल्लेख नीचे किया जाता है।

१ श्री अजरामर स्तोत्र	१४ जैन सिद्धान्त कौमुदी मूल (अर्द्ध मागधी व्याकरण)
२ कर्त्तव्य-कौमुदी प्रथम भाग	१५ जैनागम शब्द संग्रह
३ श्रावकव्रत पत्रिका	१६ जैन दर्शन मीमांसा
४ भावना-शतक सविवेचन	१७ अर्धमागधी शब्द रूपावली
५ रत्न गद्यमालिका	१८ अर्धमागधी धातुरूपावली
६ अर्धमागधीकोश प्रथम भाग	१९ रेवती दान समालोचना
७ ,, द्वितीय भाग	२० चौ० संवत्सरी समालोचना
८ ,, तृतीय भाग	२१ जैन सिद्धान्त कौमुदी टीका (अर्धमागधी व्याकरण)
९ ,, चतुर्थ भाग	२२ सा.संशोधन की आवश्यकता
१० ,, पञ्चम भाग	२३ कारण सम्वाद
११ प्राकृत पाठमाला	२४ सृष्टिवाद और ईश्वर
१२ प्रस्तार रत्नावली	
१३ कर्त्तव्य-कौमुदी द्वितीय भाग	

आपने समाज की जो वचनातीत सेवा की है, उससे समाज चिरकाल के लिए ऋणी हो गया है। आपने इस काव्य को वि० सं० १९७० में लिखा है। यह आपकी लेखनी से निकला हुआ दूसरा अपूर्व रत्न है। यह ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त हुआ है, और २३३ श्लोकों में पूर्ण हुआ है।

इस काव्य में उन्हीं विषयों का विवेचन किया है, जो सम्पूर्ण मानव समाज के लिए अत्यन्त हितावह हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य क्या होना चाहिए, बाल्यावस्था गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ तथा संन्यास में उसे कौन से नियमों का पालन करना चाहिए। द्यूत, वेश्यागमन, परदारागमन, चौर्यादि पापों का कैसा भयङ्कर परिणाम निकलता है ? मांस भक्षण, मदिरापान से मनुष्य के आचार और विचार और चारित्र गठन पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है, एक सच्ची पतिव्रता गृहिणी का अपने पिता, पति, सास-ससुर, पुत्र-पुत्री तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति क्या कर्त्तव्य है ? एक विधवा स्त्री को अपने जीवन में किन कर्त्तव्यों का पालन करना परमावश्यक है। उसके लक्षण कैसे होने चाहिए, सात्त्विक प्रेम क्या है ? कन्या विक्रय कर्म कितना निन्दनीय, घृणित और लज्जास्पद है ? उससे हमारी जाति, समाज और देश की कितनी हानि होती है, इत्यादि विषयों पर मुनि श्री शतावधानीजी महाराज ने बड़े ही सुन्दर रोचक ढङ्ग से प्रकाश डाला है और यदि इसके लिए यह कहा जाय कि "सागर को गागर में भर दिया है" तो कोई अत्युक्ति न होगी।

यह तो वर्णन हुआ मूल ग्रन्थकार का, जिन्होंने इस ग्रन्थ को संस्कृत भाषा में बनाया है। दूसरे हिन्दी पद्यानुवाद करने वाले विद्वान् पं० मूलचन्दजी वत्सल के विषय में भी इतना ही कहना काफी होगा कि उन्होंने अपूर्व योग्यता से सोने में सुगन्धि का काम किया है। यह विषय निर्विवाद है कि पं० जी का सुन्दर भावपूर्ण

पद्यानुवाद जनता के सामने न आता तो श्री शतावधानीजी महाराज के उच्च और पवित्र विचारों तथा सुन्दर शिक्षाओं से संस्कृतज्ञ उद्भट विद्वानों को छोड़ कर बहुत कम जनता लाभ उठा सकती थी। हमें पूर्ण आशा है लोग इससे पूर्ण लाभ उठावेंगे।

अन्त में ब्यावर निवासी मोतीलालजी रांका को धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते। जिनके प्रेम तथा उत्साह के कारण 'कर्त्तव्य-कौमुदी' काव्य का अनुवाद विद्वत्समाज के सामने रखा गया।

अजमेर
भाद्रपद शुक्ला १२
वि० सं० १९९१
वीर सं० २४६५

निवेदक—
रमानाथ जैन शास्त्री
न्यायतीर्थ न्या० आचार्य

अनुक्रमणिका

(प्रथम खण्ड)

(द्वितीय खण्ड)

श्री महावीराय नमः

कर्तव्य-कौमुदी

हिन्दीपद्यानुवादसहिता

मंगलाचरण ।

जीवान् स्वाचरणेन देष्टुमिव यत्सर्वेन्द्रियाणां जयं ।
त्यक्तं राज्यसुखं क्षणादभिमुखं लब्धुं पदं श्रेयसः ॥
संत्रस्तोद्धरणे परार्थकरणे येनार्पितं जीवनं ।
स श्रीवीरजिनो विनष्टवृजिनो नः श्रेयसे पावनः ॥

जीवों को सुख मार्ग दिखाने, करने को जग का उद्धार ।
त्याग राज्य सुख जीता जिनने, राग, द्वेष, मद, मोह विकार ॥
पर हित में ही निज जीवन दे, किया जगत जीवों का त्राण ।
वे श्री महावीर जिन मेरा, करें पाप-क्षय, दें कल्याण ॥

ग्रन्थ का विषय और प्रयोजन ।

(२)

ये ज्ञात्वापि हिताहिते हितपथं हित्वा व्रजन्त्युत्पथं।
तेषां शास्त्रमनर्थकं किल ततो नायं तदर्थं श्रम.
ये गन्तुं महिते समुन्नतिपथे वाञ्छन्ति जिज्ञासव-
स्तेषां बोधकृतेऽस्ति मत्कृतिरियं कर्तव्यनिर्देशिनी ॥

निज हित और अहित लख कर, जो, कभी न चलते हित पथ पर ।
उनके लिये ग्रन्थरचना यह, निष्फल है, न तनिक सुखकर ॥
हित लख कर जो उन्नति पथपर, चलने की इच्छा रखते ।
उनके हितु कर्त्तव्यमार्ग, दिखलाने को यह कृति करते ॥

(प्रथम खण्ड) प्रथम परिच्छेद

कर्तव्य का अर्थ ।

(३)

कर्तुं यस्य यदा भवेत्समुचितं यद्यच्च सद्वर्तनं ।
यद्यद्वात्मिकनैतिकोन्नतिकरं शुद्धं सतां सम्मतम् ॥
यद्यच्चाचरितं विशुद्धमनसा प्रामाणिकैः सज्जनैः ।
कर्तव्यं नरजन्मनस्तदुदितं स्वर्मोक्षसौख्यप्रदम् ॥

आत्मिक, नैतिक, उन्नति, के हित, सत्पुरुषों द्वारा सम्मत ।
जो, हैं समुचित कार्य जगत में, होता जिनसे निज पर हित ॥
उच्च जनों ने शुद्ध हृदय से, किए कार्य जो जग हित कर,
हैं वह ही कर्त्तव्य मनुज के, स्वर्ग मोक्ष दाता सुख कर ॥

कर्तव्य कौन पालन कर सकता है ?

(४)

कर्तव्येषु निरन्तरं परबलापेक्षां न कुर्वन्ति ये ।
धीरास्ते भयशोकदैन्यरहिताः कर्तव्यपारङ्गमाः ॥
ये सर्वव्यवहारसाधनविधावन्याश्रयापेक्षिण-
स्ते दीनाः पशुवत्सदापरवशाः कर्तुं क्षमाः स्युः कथम् ॥

शक्ति सहित ले कार्य हाथ में, मुँह न कभी पर का तकते ।
शोक, दीनता, भय हर वह ही, वीर ! कार्य पूरा करते ॥

जो निज पर व्यवहार कार्य में, पर आशा पर अवलंबित ।
पराधीन वे मानव जग में, साध न सकते कोई हित ॥

द्वितीय परिच्छेद

कर्तव्य के भेद और अधिकारीगण ।

(५)

शिक्षानीतिपरार्थशान्तिफलिका नृणां चतस्रो दशा-
स्तद्भेदेन तथाविधाभिधमिदं कृत्यं चतुर्धा मतम् ॥
प्राधान्यं व्यपदेशकारणमिति प्राहुस्ततः पण्डिताः ।
एकत्रापरसम्भवो यदि भवेत्तर्हि क्षतिः कापि नो ॥

शिक्षा, नीति, परार्थ शांन्ति, यह हैं चारों कर्तव्य विधान ।
अपनी वय अनुसार यथा विधि, करना यह कर्तव्य महान ॥
इनमें भी उपदेश मुख्य है, कहते इसको शुभ बुधजन ।
चारों साधन में न हानि हो, है यह ही कर्तव्य कथन ॥

कर्तव्य के भिन्न २ लक्षण

(६)

योग्यायोग्यधिया निवेदयति यत् कार्यं समस्तं पुनः ।
प्रज्ञा संस्कृतिकार्यकारणतया लोके तदाद्यं मतम् ॥
उत्कर्षं विदधद् गृहव्यवहृतेरुद्योगनीतेश्च य-
च्चारित्रे किल पर्यवस्यति शुभे कृत्यं द्वितीयं च तत् ॥

योग्य अयोग्य विधान बताती, उत्तम संस्कार को डाल ।
वह शिक्षा कर्तव्य प्रथम है, देती है जो ज्ञान विशाल ॥
जो उत्तम उद्योग बताती, सच्चरित्रता-गृह व्यवहार ।
है द्वितीय कर्तव्य नीति वह, मनुजों को अति ही सुखकार ॥

(७)

वृत्तिर्यत्र विलीयतेऽधमतरा स्वार्थप्रपञ्चात्मिका ।
जागर्ति स्वपरैकधर्मसुखदा वृत्तिः परार्था तथा ॥
शान्तौ धर्मसमाजसेवनविधौ चान्तर्भवत्येव य-
त्त्यागाभिमुखं प्रकृष्टचरितं कृत्यं तृतीयं मतम् ॥

जिस प्रवृत्ति से अधम, स्वार्थ-इच्छा होजाती शीघ्र विनष्ट ।
स्वपर धर्म हित-जागृत होता, जगती सेवा वृत्ति विशिष्ट ॥
धर्म, समाज, जाति सेवा का, जगता जिससे भाव महत् ।
वह परार्थ कर्तव्य तृतीय है, उन्नत होता त्याग चरित ॥

(८)

यस्मात्पूर्णमहोदयोऽमलचिदानन्दस्वरूपस्थितिः ।
कृत्यानां परिपूर्णता च कलुषच्छेदः समूलं भवेत् ॥
कर्तव्यं तु चतुर्थमेतदुदितं सर्वोत्तमं पण्डितै-
स्तत्सिद्धिस्तु कदाचिदेव समये कस्यापि भद्रात्मनः ॥

चिदानंदमय निज स्वरूप में, जिससे मन होता तन्मय ।
अक्षय सुख मिलता है जिससे, पाप मैल होजाता क्षय ॥
है चतुर्थ कर्तव्य त्याग वह, कहते बुधजन सर्वोत्तम ।
सिद्धि उन्हें होती है इसकी, जो हैं भव्य जीव उत्तम ॥

प्रथम कर्तव्य के अधिकारी कौन हैं ?

(९)

येषां मानसमुत्तमं च सरलं शुद्धं प्रसन्नं पुन-
श्चिन्तोपाधिविपादशोकरहिता बुद्धिर्विशुद्धा वरा ।
आलस्येन विवर्जिता विनयिनो ये ब्रह्मचर्ये रताः ॥
कर्तव्ये प्रथमेऽधिकारिण इमे ते बालविद्यार्थिनः ॥

जिनका मन उन्नत उज्वल है, सरल प्रसन्न हृदय मतिमान ।
चिन्ता, शोक विषाद रहित हैं, जो हैं उत्तम प्रतिभावान ॥
आलस जिनके पास न आता, उन्नत ब्रह्मचर्य धारी ।
ऐसे वीर छात्रगण हैं, कर्तव्य प्रथम के अधिकारी ॥

गृहस्थ धर्म के अधिकारी।

(१०)

येषामुन्नतिकामना प्रतिदिनं प्रीतिः परार्थे परे।
द्रव्योपार्जनलालसापि न कदा नीतिं समुल्लङ्घते॥
वृत्तिर्धर्मपराङ्मुखा न भवति क्लेशस्य लेशोऽपि नो।
ते बोध्या अधिकारिणः सुगृहिणः कृत्ये द्वितीये शुभे॥

रहती उन्नत रूप कामना, पर उपकार मध्य दृढ़ प्रीति।
द्रव्य कमाने की न लालसा, करके नाना भांति अनीति॥
धर्म कार्य से विमुख न होते, नहीं क्लेश का जिनके लेश।
ऐसे मनुज गृहस्थ धर्म के, अधिकारी हैं सरल सुवेष॥

तृतीय कर्तव्य के अधिकारी

(११)

प्राणान्तेपि चलन्ति किंचिदपि नो धैर्येण ये धर्मतः।
सर्वस्वापगमेप्यसत्यवचनं नेच्छन्ति वक्तुं क्वचित्॥
आशापाशनिरासनोच्छ्रितबलाः प्रेम्णा परार्थे रताः।
एते स्युस्त्वधिकारिणो बुधवराः कृत्ये तृतीये वरे॥

नहीं प्राण जाने पर भी जो, धैर्य धर्म अपना खोते।
धन वैभव विनष्ट होने पर, मिथ्या वचन न जो कहते॥
तोड़ डालते आशा बंधन, प्रेम सहित परहित में रत।
धीर प्रशंसा योग्य विज्ञ वह, हैं परार्थ कर्तव्य निरत॥

त्याग अथवा योग के अधिकारी ।

(१२)

नष्टा वैभववासना विषयतो येषां विरक्तं मनो- ।
नो मोक्षेतरकामनास्ति समता मानेऽपमाने तथा ॥
चित्तं निश्चलमात्मसाधनविधौ लोभस्य लेशोऽपि नो- ।
ते भव्या अधिकारिणो व्रतपराः कृत्ये चतुर्थे परे ॥

विषय वासना नष्ट हुई है, जग वैभव से हुए विरक्त ।
मान और अपमान रहित जो, मोक्ष-कामिनी में अनुरक्त ॥
निश्चलचित्त आत्मसाधन रत, लोभ मोह से सदा रहित ।
वे कर्तव्य त्याग के धारी, व्रतधारी हैं मनुज महत् ॥

तृतीय परिच्छेद

कर्तव्यकाल विभाग ।

(१३)

सामान्येन हि यावदायुरधुना सम्भाव्यते मानवे ।
योंऽशस्तस्य चतुर्थ एष समयः प्रत्येकमेषां क्रमात् ॥
स्यादुक्तक्रमरक्षणेन सकलं कार्यं व्यवस्थायुतं ।
साफल्यं नरजन्मनश्च सुखदाः स्युः शक्तयः सर्वथा ॥

देश, काल अनुसार आयु के, करके समुचित चार विभाग ।
नियत समय पर चारों, कर्तव्यों से रखना दृढ़ अनुराग ॥
क्रम का रक्षण करके विधियुत, करना निज कर्तव्य सफल ।
जिससे हो नर जन्म सफल, सुख, शक्ति प्राप्ति नित हो निश्चल ॥

कर्तव्य का क्रम ।

(१४)

यद्यत्स्वल्पपरिश्रमेण तरसा कृत्यं सुसाध्यं भवे-
त्तत्तत्स्वल्पफलं तथापि रतो युक्तं तदारम्भणम् ॥
यस्मात्सम्भवति क्रमेण मनुजे शक्त्युन्नतिर्नान्यथा ।
भारं वोढुमलं शिशुः किमु भवेच्छक्तिं विना दैहिकीम् ॥

थोड़े श्रम से सफल कार्य, थोड़ासा ही फल देते हैं ।
अधिक लाभ लेना अतिश्रम कर, कुछ नर ऐसा कहते हैं ॥
पर पहिले थोड़ा श्रम कर के, करना शक्ति विकास अहो ।
शक्तिरहित शिशु कठिन भार को, रख सकता है कभी कहो ? ॥

(१५)

व्यायामादिविकाशिते निजबले बालः स एवान्यदा ।
वाह्यं पंचपपूरुषैः स्वयमहो हस्तेन वोढुं क्षमः ॥
एवं यस्य यथायथा प्रकटिता शक्तिर्भवेदात्मनः ।
शक्यं तेन तथोच्चरोच्चरमहो कार्यं परं साधितुम् ॥

बालक भी व्यायाम आदि से, करके शक्ति विकास प्रबल ।
पांच नरों का कठिन भार, रखने में होता अहो सफल ॥
ज्यों ज्यों श्रम साधन से बढ़ती, शक्ति और सामर्थ्य महान ।
त्यों त्यों महाकार्य का साधन, करना मानव को हित ठान ॥

जहाँ आकस्मिक शक्ति विकास हो वहाँ क्रम नहीं ।

(१६)

प्राक् संस्कारबलेन यस्य फलिता सत्त्यागवृत्तिर्दृढा ।
स्वार्थत्यागसहिष्णुतादिकमनःशक्तिः पुरैवोद्गता ॥
स त्यागादिकमुत्तरोत्तरमलं कर्तव्यमासेवतां ।
योग्यत्वात्क्रमलंघनेऽपि न मनाक् बाधात्र काप्युह्यते ॥

पूर्व जन्मफल से जिसके, वालक वय से हों उच्च विचार ।
धैर्य, क्षमा, सहिष्णुता गुण हो, प्रबल मानसिक शक्ति उदार ॥
तो वह उज्ज्वल त्याग वृत्ति को, धारण करले अहो प्रथम ।
आकस्मिक गुण के विकास में, नहीं उचित है कोई क्रम ॥

चारों कर्तव्य संयोग से भिन्न भी रहते हैं ।

(१७)

पूर्वंपूर्वमथोत्तरोत्तरविधा संलीयते कुत्रचि-
त्पुंसः शक्त्यनुसारतः क्वचिदपि प्राधान्यतस्तिष्ठति ।
क्वाप्येतानि समाश्रयन्ति समतां वैषम्यकोटिं क्वचि-
त्कालादेशवशाच्च वस्तुवशतः कार्येषु सर्वक्रमः ॥

इस जग में प्रत्येक पुरुष को, मिलते नहीं एक से योग ।
कभी किसी नर को मिल जाते, इस जग में विरुद्ध संयोग ॥
अथवा शक्तिहीनता से, क्रम पालन में आ जाते विघ्न ।
देश, काल अनुसार कार्य क्रम, बना सदा रहता संलग्न ॥

चतुर्थ परिच्छेद

कर्तव्य के योग्य क्षेत्र

(१८)

धैर्यं शौर्यसहिष्णुते सरलता सन्तोषसत्याग्रहौ ।
तृष्णाया विलयः कषायविजयः प्रोत्साहनं मानसम् ॥
शान्तिर्दान्तिरुदारता च समता न्याये परार्थे रति-
श्चैते यत्र गुणाः स्फुरन्ति हृदये तत्रैव मानुष्यकम् ॥

साहस, सहनशीलता, धैर्य, सरलता सत्याग्रह संतोष ।
तृष्णा रहित, कषाय विजय, हो शुभ उत्साह भाव निर्दोष ॥
शांति, सरलता, समता, दृढ़ उपकार भावना नीति प्रकाश ।
यह गुण होते जहां, वहीं पर, करता है कर्तव्य निवास ।

क्षेत्र की शुद्धि

(१९)

मानुष्यं हि निरुक्तलक्षणयुतं क्षेत्रं प्रधानं मतं ।
कर्तव्याख्यतरोःप्ररोहणविधेर्योग्यं सतां सम्मतम् ॥
स्याच्चेदोषतृणोपलाद्युपहतं शोध्यं तदा तत्पुरो- ।
नोचेन्निष्फलतामुपैति सकलस्तद्रोपणादिश्रमः ॥

शुभ लक्षण से भूषित जग में, जो मानव हैं सुगुण निधान ।
वे कर्तव्य वृक्ष बोने को, बनते हैं शुभ भूमि महान ॥
हों यदि दुर्गुण तृण कंटक तो, करते उनको शीघ्र विनष्ट ।
क्षेत्र विशुद्ध न होगा यदि तो, बीज और श्रम होगा नष्ट ॥

कर्तव्य की अवस्थाएं।

(२०)

इच्छायां प्रथमं निमित्तवशतः कर्तव्यमुत्पद्यते ।
तत्र प्राप्य बलं प्रवृत्तिपदवीमारोहति प्रायशः ॥
अभ्यासेन चिरं प्रवृद्धबलतः स्थैर्यं समालम्बते ।
निष्ठामेति ततः क्रमेण परमां पूर्णां तदर्हे बले ॥

शुभ योगों के मिलने को, कर्तव्य ध्यान मन में आता ।
इच्छा के अनुसार अन्य के, भावों का फिर बल मिलता ॥
करके चिर अभ्यास ज्ञान से, आती है फिर स्थिरता ।
शक्ति और बल बढ़ जाने से, होती है निश्चल दृढ़ता ॥

कर्तव्य पर अमल करने वाली चिद् वृत्ति ।

(२१)

शुद्धान्तःकरणोत्थिताध्यवसितिर्या चेतना लक्षिता ।
सद्बुद्ध्याऽऽह्वयतां गता च सदसन्मार्गस्य निर्देशिका ॥
कोन्श्यन्सेतिपदेन चाङ्गलगिरं या वाच्यते शोधकैः ।
सा चिद्वृत्तिपदेन संस्कृतगिरं त्वाश्रित्य संलक्ष्यते ॥

शुद्ध हृदय तल में विचार की, लहरें उठती हैं घनघोर ।
चेतन मय सद्बुद्धि लहर, ले जाती ऊत्तम पथ की ओर ॥
कहते हैं पाश्चात्य विज्ञ नर, इसको कोन्शियन्स अधिकार ।
और संस्कृत में कहते हैं, महा चेतना शक्ति उदार ॥

चिद्वृत्ति आज्ञा या निषेध किस रीति से करती है।

(२२)

सत्कृत्ये मुदिता करोति नितरां कर्तव्यनिर्देशनं।
दुष्कृत्ये कुपिता निवारयति तं कृत्याच्च दुःखास्पदात्।
स्यात्स्वच्छा यदि चेतना शुभतरा चित्तस्य शान्तिस्तथा।
ज्ञायेते पुर एव तत्र जनितौ कोपप्रसादौ तथा॥

शुभ कार्यों में चित्तवृत्ति, हर्षित हो करती है निर्देश।
दुष्कृत्यों में दुखित हृदय हो, करती है वह कोप विशेष॥
जिसका हृदय शुद्ध होता है, दुष्ट भावना सोती है।
चित्तवृत्ति की छाया बसे यह, ज्ञात उसे ही होती है॥

दुष्कृत्य क्यों होता है।

(२३)

संस्कारैरशुभैः कुबुद्धिजनकैः कर्माणुभिः सञ्चितै-
राक्रान्ता यदि चेतना मलइता व्याप्ता च जाड्येन वा॥
चिद्वृत्तिस्फुरणा भवन्त्यपि तु तास्तेषां न धीगोचरा।
मन्दास्तेन मदोद्धताः प्रतिदिनं कर्तुं कुकृत्यं रताः॥

अशुभ संस्कारों के बल से, होता है कुबुद्धि का वास।
चेतनता जिससे दब जाती, जड़ता करती सदा निवास॥
चित्तवृत्ति की लहरों का, कुछ उसको ज्ञान नहीं होता।
मद में रत हो वह मानव, प्रतिदिन अति ही कुकृत्य करता॥

चिद्वृत्ति और शुभ विचार।

(२४)

शुद्धाशुद्धनिमित्तसन्निधिवशाच्चित्ते विचारावुभौ ।
जायेते च शुभाशुभौ प्रतिपलं जागर्ति युद्धं तयोः ॥
तत्र स्याद्यदि चेतना बलवती शुद्धस्य सत्यं जयो ।
नो चेन्मोहवतोऽशुभस्य विजयः शुद्धस्तु संलीयते ॥

शुभ निमित्त से शुभ विचार हों, किन्तु अशुभ से अशुभ विचार ।
होते हैं शुभ अशुभ कभी जब, होता युद्ध अनेक प्रकार ॥
होती यदि बलवान चेतना, शुभ विचार की होती जय ।
होता यदि बलवान मोह तो, पाते अशुभ विचार विजय ॥

पंचमपरिच्छेद

(कर्तव्य और संकल्प शक्ति)

कर्तव्य का निर्वाह करने वाली संकल्प शक्ति।

(२५)

यत्राशुद्धनिमित्तवृन्दविजयः सत्कार्यविध्वंसको ।
दुष्कृत्यं दुरितोद्भवं कृतिपथे जागर्ति यत्र स्वयम् ॥
चेच्चिद्वृत्तिबलान्वितात्र समये सङ्कल्पशक्तिः स्फुरेद् ।
दुष्कृत्यस्य तदा भवेद्विलयनं सद्बुद्धिसत्त्वोदयः ॥

करते हों कर्तव्य ध्वंस, जिस समय अशुभ कारण आकर ।
दुष्कृत्यों की ओर चित्त को, ले जाते हों फुसलाकर ॥
चित्तवृत्ति के बल से हो यदि, दृढ़ संकल्प शक्ति जागृत ।
हो जाते दुष्कृत्य नष्ट सब, होती है सुबुद्धि वर्द्धित ॥

संकल्प शक्ति के अधीन कर्तव्य सिद्धि।

(२६)

प्राबल्यं प्रभुता प्रभूतविभवः प्राज्यश्च राज्यं यशः।
साम्राज्यश्च समाजनायकपदं सेनाधिपत्यं तथा॥
पुण्याधीनमिदं नरस्य निखिलं साध्यं न शक्त्या स्वतः।
कर्त्तव्यन्तु यथोचितं शुभमनःसंकल्पशक्त्याश्रितम्॥

प्रबल शक्तिशाली, प्रभुता, वैभव, यश, राज्य ऋद्धि बलवान।
बनना हो समाज नेता यदि, सेनापति कर्तव्य निधान॥
तो न करो तुम पूर्व पुण्य के, फल का मन में किंचित् ध्यान।
दृढ़ मन से संकल्प शक्ति से, करो उचित कर्तव्य महान॥

संकल्प शक्ति मर्यादा में ही सुखकर है।

(२७)

एषा नैव च सर्वथा सुखकरी संकल्पशक्तिः स्वयं।
किन्त्वात्मोन्नतभावनानियमिता यत्रास्ति तत्रैव सा॥
यत्राज्ञानपिशाचपाशकलिता दुर्वासनावासिता।
स्यात्तत्राहितसम्भवः क्षतिततिः सञ्जायतेऽनेकशः॥

है संकल्प शक्ति जग में दृढ़, पर न सर्वथा है सुखकर।
आत्मोन्नति भावना शक्ति का, रखना दृढ़ अंकुश उस पर॥
यदि अज्ञानपाश से जकड़ी, दुर्भावना पूर्ण होगी।
महाअनर्थों की साधक बन, प्रलय विश्व में कर देगी॥

चिद्वृत्ति और संकल्प शक्ति को सुधारने का यत्न।

(२८)

बाल्यादेव तथाविधोऽनवरतं यत्नो विधेयो जनै-
रभ्यासोऽपि तथैव धर्मचरणं शास्त्रप्रवेशस्तथा ॥
चिद्वृत्तिर्विमला यथैव भवति ज्ञातुं पुनः शक्यते।
सत्संकल्पबलं यथा च नियतं शुद्धात्मभावैः सदा ॥

बालकपन से शुभ शिक्षण, शुभ नीति, ज्ञान का कर अभ्यास।
धर्म आचरण, शास्त्रज्ञान से, करना उत्तम बुद्धि विकास।
शुद्ध बनाना चित्तवृत्ति को, मत जाने देना प्रतिकूल॥
शुभ संकल्प शक्ति हो जिससे, शुभ भावना हो अनुकूल।

शक्तियां को कर्तव्य में लगाने की रीति।

(२९)

उद्दिश्यैककृतिं कथञ्चिदपि चेदायोज्य शक्तीः समा।
दीनादीनतरोऽपि यत्ननिरतः किञ्चित्फलं प्राप्नुयात् ॥
लक्ष्यीकृत्य समस्तकार्यनिकरं शक्तीः प्रसार्याखिलं।
कर्तुं चेत्सहसोद्यतोऽपि बलवान्नाप्नोति सिद्धिं क्वचित् ॥

एक कार्य को लक्ष्य बनाकर, शक्ति लगादे यदि पर्याप्त।
तो अशक्त मानव भी जग में, कर सकता है शुभ फल प्राप्त॥
लक्ष्य बना अनेक कार्यों को, फैला दे यदि शक्ति सभी।
तो बलवान शक्तिशाली भी, सिद्धि न पाता अहो कभी।

कर्तव्य की उन्नति देशोन्नति है

(३०)

नो देशस्य समुन्नतिर्दृढतरैर्दुर्गैर्वैभवैर्मीयते ।
नो द्रव्यैर्न च दिव्यहर्म्यनिकरैर्नाश्वैर्गजैः सैनिकैः ॥
स्वान्योद्धारकनीतिरीतिकुशलैः कर्तव्यनिष्ठैः सदा ।
शान्तिक्षान्तिपरायणैः सुपुरुषैर्देशोन्नतिर्मीयते ॥

दृढ़ दुर्गों से नहीं देश की, उन्नति का कुछ होता ज्ञान।
वैभव, महल, सैन्य अश्वों से, होता नहीं कभी भी भान॥
निज पर के उद्धारक, नीति कुशल, कर्तव्य-निरत गुणवान।
शांति, क्षमा, रत सत्पुरुषों से, देशोन्नति का होता ज्ञान।

कर्तव्यपरायणता या सुजनता का मूल्य।

(३१)

पाण्डित्येन न मीयते सुजनता वक्तृत्वशक्त्याऽथवा ।
चातुर्येण धनेन भव्यवपुषा राज्याधिकारेण वा ॥
किन्तूत्कृष्टदयाक्षमासरलतावात्सल्यधैर्यादिभि-
रात्मोद्धारपरोपकारजनकैः सा मीयते सद्गुणैः ॥

सुन्दर तन, चातुर्य्य, संपत्ति, तथा राज्य अधिकार सभी।
पंडित, वक्तापन होने से, मिलती सज्जनता न कभी॥
क्षमा, सरलता धैर्य, दया, वात्सल्य भावना सुगुण महान।
आत्मोद्धार, परोपकार यह, सज्जनता की है पहिचान॥

ज्ञान और सौजन्य में कौन श्रेष्ठ है।

(३२)

चारित्रस्य न विद्यया प्रबलता सौजन्यवृद्ध्या यथा।
सौजन्येन हि नम्रता रसिकता नो विद्यया दृश्यते ॥
मिथ्यादम्भमदादयः सहचरा ज्ञानस्य शुष्कस्य हा।
सौजन्यस्य तु नैव तेन परमं सौजन्यमेवाश्रयेत् ॥

सज्जनता से मेल चरित का, रखता कुछ संबंध न ज्ञान।
सज्जनता के विनय, विनम्रता, शांति चान्ति हैं मित्र महान ॥
शुष्क ज्ञान के मिथ्या, दंभ, घमंड तथा छल हैं सहचर।
सर्व श्रेष्ठ सौजन्य जगत में, है इसका आश्रय सुखकर ॥

सप्तम परिच्छेद (उत्साह)

कर्तव्य का सच्चा बल उत्साह में है।

(३३)

उत्साहः किल कापि शक्तिरनघा विघ्नौघविध्वंसिनी।
नैराश्याङ्कुरनाशिनी सफलतासांनिध्यसम्पादिनी ॥
सद्यः सिद्धिविधायिनी निरुपमानन्दौघसंस्यन्दिनी।
श्रीसत्कीर्तिविवर्धिनी महति वा कार्ये बलाधायिनी ॥

विघ्न नाश करने वाली, उत्साह शक्ति है अति दृढ़तर।
चय करती निराशता अंकुर, पूर्ण सफलता देती भर ॥
अनुपमसिद्धि साधनेवाली, परमानन्द प्रदायक है।
उज्ज्वल यशवर्द्धक, फलदायक, महाकार्य की साधक है ॥

उत्साह के आगे विघ्न क्या कर सकते हैं।

(३४)

उत्साहो यदि मानसे प्रथमतो मध्येऽवसाने तथा।
कुर्वेऽवश्यमिदं भवेद् दृढतरश्चैवंविधो निश्चयः॥
आयान्तु प्रचुरास्तदा कृतिपथे विघ्नास्तथापि स्वयं।
दीनास्ते बलहीनतामुपगता लीना भवन्ति क्षणात्।

आदि मध्य में तथा अंत में, रहता है यदि दृढ़ उत्साह।
कार्य करूंगा मैं अवश्य यह, होती दृढ़निश्चय यदि चाह॥
आने वाले प्रबल विघ्न सब, स्वयं नष्ट हो जाते हैं।
दीन हीन, बल क्षीण बने वह, कभी नहीं फिर आते हैं।

विघ्न कहाँ तक रहते हैं।

(३५)

विघ्नास्सन्ति हि तावदेव बलिनः कर्तव्यसंरोधका।
यावद् दुर्बलता मनःशिथिलता कर्तुं रुचेर्मन्दता॥
चेदुत्साहविनिश्चयोभयबलं जागर्ति हृन्मन्दिरे।
किं कर्तुं प्रभवन्ति दुर्बलतरा विघ्ना वराका इमे॥

तब तक ही कर्तव्य मार्ग में, विघ्न डालते हैं अवरोध।
जब तक है दुर्बलता मन में, भरा निराशाओं का बोध॥
जब उत्साह और दृढ़ निश्चय, अन्तस्तल में जगता है।
तब वह दुर्बल, रंक विघ्न दल, क्या कुछ भी कर सकता है?॥

उत्साह ही कल्पवृक्ष है।

(३६)

मुग्धाः कल्पतरुं वृथान्यभुवने पश्यन्ति सौख्याशया।
लब्धुं कामघटं तथा सुरगवीं भ्रामन्त्यहो किं वृथा॥
ते पश्यन्तु निरुक्तशक्तियुगलं हृन्मन्दिरे निश्चलं।
सर्वं कामघटादिकं लवयुतं दृश्येत साक्षादिह॥

कार्य सिद्धि हित भटक रहे क्यों ? कल्पवृक्ष के लिऐ अहो!।
काम कुंभ या काम धेनु हित, क्यों फिरते हो व्यर्थ कहो!।
हृदयस्तल में क्यों न खोजते, दृढ़ निश्चय उत्साह महान।
कल्पवृक्ष से अधिक सदा, देता प्रत्यक्ष सिद्धि का दान॥

लोकापवाद से क्या कार्य त्याग देना चाहिए।

(३७)

सत्कार्यस्य विनिश्चये हृदि कृते सत्यां स्वशक्तौ पुन-
र्लोकाः किं कथयन्ति चेति विषये नैवं निरीक्षोचिता॥
प्रायोऽन्योऽन्यविरुद्धतामुपगता जल्पा जनानां ततो।
निष्ठां कापि लभेत नो स सुकृतौ लोकोक्तिमीक्षेत यः॥

शक्ति प्रमाण सुदृढ़ निश्चय से, कर सुकार्य आरंभ कहीं।
लोगों के कुछ कहने पर, लाना निर्बलता कभी नहीं॥
कहते हों प्रतिकूल और, निन्दा करते हों कोई जन।
पर लोकापवाद से कभी न, हटना, करना कार्य कठिन॥

अष्टम परिच्छेद

कर्तव्य नाशक बल

आलस्य कर्तव्य का नाशक है

(३८)

आलस्येन हि यावती क्षतिततिः सञ्जायते दैहिकी।
रोगेणापि न तावती किल भवेन्नासत्यमेतद्यतः॥
आलस्यं मरणावधि क्षतिकरं नो भेषजाल्लीयते।
रोगस्त्वल्पदिनैरुपैत्युपशमं सद्योपि वा भेषजात्॥

आलस द्वारा होती है जो, दृढ़ शारीरिक हानि महान्।
होती नहीं कठिन रोगों से, इतनी हानि महा दुख खान॥
रहते कुछ दिन तक ही; औषधि से हो जाते रोग विनष्ट।
आलस विष की दवा नहीं है, जीवन भर देता है कष्ट॥

(३९)

आलस्यस्य महोदये सति परं धर्मार्थकामक्षति-
र्दारिद्र्यं क्षुधया सह प्रविशति ख्यातिः क्षयं गच्छति॥
विज्ञानं विनिवर्तते निजकला संलीयते च द्रुतं।
कर्तव्यस्य तु का कथाऽतिकरुणापात्रं भवेज्जीवनम्॥

होता है आलस्य जहाँ, कर देता धर्म अर्थ का नाश।
आती है दरिद्रता क्षण में, कर देता सुख सुयश विनाश॥
ज्ञान, कला कौशल, शुभ विद्या, हो जाती है नष्ट अहो।
दीन दशा रहती जीवन भर, वहाँ कहाँ कर्तव्य कहो॥

आलस्य का विचित्र फल।

(४०)

यद्येतन्नृपतेस्तनौ निविशते राज्येऽन्धकारस्तदा।
सैन्ये चेत्समरे विनाशनमरेर्हस्ते तु राष्ट्रं भवेत्॥
चारित्रात्स्खलनं च चेन्मुनितनौ कौटुम्बिकाधोगति-
श्चेदेतत्कुलनायके जनपदे चेद्देशनाशस्तदा।

छा जाता अंधेर राज्य में, यदि नृप आलस रत होता।
रण से यदि सेना में होता, देश नष्ट तो हो जाता॥
यदि मुनि के तन में रहता तो, होता है चारित्र विनष्ट।
गृहस्वामी में होता यदि, हो जाता तो गृह भी नष्ट॥

विष से आलस्य की अधिक भयंकरता।

(४१)

रे आलस्य! तवोग्रनाशककृतिं दृष्ट्वा विषं लज्जितं।
न्यक्कारासहनाद्विहाय वसुधां रुद्रस्य कण्ठे स्थितम्॥
मन्ये तेऽपि तिरस्कृताः क्वचिदहो गुप्तप्रदेशं श्रिता।
दृश्यन्ते भुवि नैव तेन तदहो प्रेताः पिशाचादयः॥

आलस तेरी नाशक कृति लख, विष भी हुआ अरे लज्जित।
देख उग्रता हार मान, शंकर के कंठ हुआ स्थित॥
भूत प्रेत भी तेरे भय से, लज्जित हुए अरे! डर कर।
तुझ से तिरस्कार पा गुप्त, जगह में छिपे अहो जाकर॥

नवम परिच्छेद

कर्तव्य घातक दोष

क्रोध।

(४२)

क्रोधादप्रियता जनेषु परितो व्याहन्यते गौरवं।
शान्तिर्नश्यति सत्वरं स्वसुहृदा वैरं परं जायते॥
चिद्वृत्तिस्खलनं मनोवलहतिः सङ्कल्पशक्तिक्षतिः।
स्थैर्यस्यापि विनाशनं सहृदयक्लेशः कृतिर्निष्फला॥

क्रोधी मनुज अप्रिय बन जग का, खो देता गौरव सम्मान।
शांति भंग कर वैर बढ़ाता, प्रिय बन जाते शत्रु समान॥
दृढ़ संकल्प शक्ति क्षय होती, चंचल बन जाता है मन।
बढ़ता क्लेश, धैर्य जाता है, निष्फल हो जाता जीवन॥

क्रोध की क्रूरता।

(४३)

यद्येषः प्रभवेत्समर्थपुरुषे मान्येऽधिकारस्थिते।
दीनानामसहायिनां तनुभृतां त्रासस्तदा जायते॥
हीनानां तु भवेदयं यदि तदा संतप्यते मानसं।
तत्तापेन विवेकहानिरनया दुःखं महत्प्राप्नुयुः॥

यदि कोई समर्थ अधिकारी, कभी क्रोध के वश होता।
दीन, क्षीण, धनहीन जनों को, निश दिन महा त्रास देता॥
होता दीन क्रोध रत यदि तो, मन ही मन में जलता है।
देह क्षीण हो, ज्ञानहीन हो, महा दुखों को सहता है॥

क्रोध की सीमा।

(४४)

बालानां हितशिक्षणे भृतजनस्खालित्यसम्बोधने।
दुष्टातिक्रमणेऽपराधिदमने स्वातापसन्दर्शने॥
अस्यावश्यकता भवेद्यदि तदा सोप्यस्तु सद्भावजः।
शक्यो रोद्धुमपेक्षिते च समये स्याद्येन धर्मः सुखम्॥

दुष्टों का निग्रह करने, छात्रों को देने हित शिक्षण।
अपराधी के दंड हेतु, करना होता जो क्रोध ग्रहण॥
होता भूल सुधार हेतु जो, आवश्यक सद्भावस्वरूप।
वह भी मर्यादित हो यदि तो, सुखकारी है उचित अनूप॥

दशम परिच्छेद

मात्सर्य का त्याग।

(४५)

मात्सर्यं मृदुताहरं मदकरं मिथ्याभिमानोच्छ्रितं।
सत्यासत्यविवेकबुद्धिममलां व्याहन्ति यच्चेर्ष्यया॥
दोषं दर्शयते गुणेषु गुणिनां दोषे निजे वा गुणं।
बुद्ध्या तद्विनिवर्तनीयमनिशं कर्तव्यसंसिद्धये॥

जिससे कोमलता जाती, मिथ्याभिमान का खुलता द्वार।
सत्यासत्य विवेक बुद्धि, क्षय होती आता द्वेष विकार॥
पर गुण दोष राशि दिखते हैं, गुण स्वदोष बन जाते हैं।
दोष राशि मात्सर्य भाव वह, ज्ञानी कभी न लाते हैं॥

निंदा का परित्याग।

(४६)

निन्दाऽसत्यसहोदरा गुणहरा सौजन्यसंहारिणी।
दोषारोपणकारिणी गुणगणे क्लेशस्य सञ्चारिणी॥
चारित्रांशविघातिनी जनमनःसन्तापिनी पापिनी
त्याज्या दोषविनाशनाय विदुषा कर्तव्यसंसिद्धये॥

है असत्य की भगिनी निंदा, सज्जनता का क्षय करती।
गुण के बदले दोष दिखाती, मनमें सदा क्लेश भरती॥
सच्चरित्रता हर लेती है, करती है संतापित मन।
दूषित निन्दा तज करके, कर्तव्य सिद्ध करते सज्जन॥

निंदा दूसरे गुणों पर पानी फेर देती है।

(४७)

आस्तां सच्चरणे परार्थकरणे प्रीतिः सुनीतौ रति-
र्धैर्यं वीर्यमनुत्तमं भवतु वा शुद्धं प्रबुद्धं मनः॥
विज्ञानं विपुलं तथापि किमहो कार्यं शुभैस्तद्गुणै-
रेको यद्व्यसनाश्रितो रसहरो निन्दाभिधो दुर्गुणः॥

तब तक सच्चरित्रता रहती, प्रीति, नीति उपकार पुनीत।
धैर्य, शक्ति, सुविवेक मनोबल, निश्चल श्रद्धा सत्य प्रतीत॥
विपुल ज्ञान, शुभ कार्य साधना, सद्गुण रहते हैं तब तक।
रसना पर स्थान न पाती, रसनाशक निंदा जबतक॥

निंदा और शूकर का संबंध ।

(४८)

रे त्वं काऽसि ? न वेत्ति मां किमु भवान्निन्दाभिधानास्म्यहं ।
त्वं चैका ? नहि शूकरोऽस्ति सहजः कार्यैक्यमस्त्यावयोः ॥
किं कार्यं ? युवयोर्भवेत्किमपरं भुक्त्वा च भुक्तिक्रियां ।
भोज्यं किं मलमद्मि मानसमहं वन्धुस्तु तज्जाठरम् ॥

रे तू कौन ? मुझे न जानते, मैं हूं नारी निंदा नाम ।
मेरा भाई सूकर भी है, देखो मेरा साधक काम ॥
क्या है तेरा काम, अरे वस, खांना मात्र हमारा काम ।
क्या खाती है, मैल पेट का, खाते रहते दोनों धाम ॥

निंदा की गुदा मांस से उपमा ।

(४९)

तस्मादेव पिशाचिका त्वमसि किं चाण्डालिका डाकिनी ।
नो चेद्ब्रूहि किमन्यकारणमहो सद्यो ब्रुवे श्रूयताम् ॥
भोज्यं मेऽन्तिमतीर्थकृत्समुदितं यत्पृष्ठमांसोपमं ।
तस्मान्मां कथयन्तु केनचिदिमे नाम्ना सहे सर्वथा ॥

निंदा तुझे पिशाची डाकिनी, चांडालनी कहते नर ।
सत्य कथन है, सुनो बताती, मैं इसका कारण सत्वर ॥
मेरा खाम पान लख कहते, गुदा मांस मुझको श्री वीर ।
इसीलिए मैं सह लेती हूं, यह सब संबोधन गंभीर ॥

धर्मस्थानों में भी निंदा।

(५०)

रे! निन्दे कुरुतात्परत्र वसतिं किं स्याद् वसत्यात्र मे-
ऽदूष्यान्दूपयसे मुनीनपि परं धर्मेस्थितान्सज्जनान् ॥
सत्यं कारणमस्ति तच्छृणु सखे धर्मो हि शत्रुः कले-
र्मान्याऽहं कलिभूपतेः स च यथा रज्येत्तथा मे कृतिः ॥

धर्म स्थान त्याग हे निंदा, कर तू चाहे जहाँ निवास।
दूषित बन जाते हैं तुझ से, मुनि, धार्मिक सज्जन गुण राश ॥
सच है, इसका हेतु सुनो, कलिकाल धर्म का शत्रु महान।
राजा कलि के साथ साथ, मैं भी रहती हूं धर्म-स्थान ॥

सद्गुणों के साथ निंदा का विरोध।

(५१)

शान्ते! याहि दिगन्तरालविवरं लज्जे! व्रज त्वं वनं।
त्वं शून्ये निलये विधाय करुणे! ऽरण्ये भृशं क्रोशतात् ॥
सत्य! प्रेतवनं समाश्रय सखे नीतेऽभिधा मास्तु ते।
स्युश्चेद्धर्मपदाश्रिता अपि जना निन्दादिदोषे रताः ॥

हे शान्ते! जा भाग कहीं तू, लज्जे? रह वन में छिप कर।
रोले जितना रोना हो, करुणे! सूने वन में जाकर ॥
सत्य! प्रेत वनकर जा रह तू, नीति पड़ेगी तुझ पर गाज।
तुम सब के आश्रय, निन्दारत, हुए धर्म अधिकारी आज ॥

निन्दा अपने ही दोषों की करो।

(५२)

यद्यस्ति प्रकृतिस्तथा न च विना निन्दां सुखं लभ्यते।
जय्या नेति वदेस्तदा स्वहृदये सूक्ष्मेक्षिका दीयताम् ॥
दोषाः सन्ति यदाऽमिताः किल निजाः सद्बुद्धिसम्पच्छिद-
स्तेषामेव हि बाधनाय कुरुतां स्वस्यैव निन्दां तदा ॥

निंदा ही स्वभाव यदि तेरा, वह ही तुझको है सुख कर।
तव तू सूक्ष्म दृष्टि से अपने, दोषों का अवलोकन कर ॥
गुण नाशक, सद्बुद्धि विनाशक, तुझ में भरे हुए जो दोष।
जी भर उनकी ही निन्दा कर, वन जाएगा तू निर्दोष ॥

दूसरे मनुष्य की भूल किस तरह सुधारना।

(५३)

दोषः कर्णपथागतोऽपि न भवेद्यावद्दृशोर्गोचर-
स्तावत्तं न नयेत्परश्रुतिपथं निन्दाधिया सज्जनः ॥
चक्षुर्गोचरतां गतोपि समितौ नायं प्रकाश्यो जनै-
र्ज्ञाप्यः किन्तु तदन्तिके हितधिया यस्यापराधोऽस्ति सः ॥

देखा नहीं आँख से जवतक, दोष कान से ही सुनकर।
सज्जन का अपमान न करना, कभी अन्य नर से कहकर ॥
सच्चा दोष दृष्टिगत भी हो, तो भी उसको प्रकट न कर।
ले जाकर एकान्त जगह में, शुभ शिक्षा देना हितकर ॥

दोष छुड़ाने के लिये क्या निन्दा की आवश्यकता है ?

(५४)

वस्त्राशुद्धिनिवृत्तये नहि भवेत्पङ्कस्य लेपो यथा ।
दुष्टाचारनिवृत्तये न च भवेन्निन्दाप्रवृत्तिस्तथा ॥
तस्माद्रीतिरियं सदाऽहितकरी दोषास्पदं त्यज्यतां ।
यस्यां नास्ति फलञ्च किञ्चिदपरं द्वेषं च वैरं विना ॥

मलिन वस्त्र कीचड़ द्वारा ज्यों, शुद्ध न होता कभी कहीं ।
इसी तरह से दुराचार, निन्दा से होता नष्ट नहीं ॥
बढ़ता और अधिक प्रतिदिन ही, बनता द्वेश, वैर साधन ॥
निष्फल निंदा को तुम त्यागो, सच्चे गुण के ग्राहक बन ॥

एकादश परिच्छेद (कर्त्तव्य साधक भाषा)

कैसी भाषा बोलनी चाहिये

(५५)

स्यात्कस्यापि यदि प्रसङ्गवशतः किञ्चिद्विवक्षा क्वचि-
च्चिन्त्यं तत्सुधिया पुरा स्वहृदये शोध्यं विचाराग्निना ॥
तोल्यं कण्ठसमागतं मतिमता जिह्वातुलायामतो ।
नो चेत्तुच्छमनर्थकं क्षतिकरं वाच्यं तदेवोचितम् ॥

किसी कार्य वश यदि कहना ही, तुमको कभी पड़े प्रियवर ।
तो पहिले सुविचार अग्नि से, शब्दों को विशुद्ध लो कर ॥
कंठ मध्य आते ही तोलो, जीभ तराजू पर लाकर ।
यदि हों खोटे, कटुक हानिकर, कभी न बोलो हित लखकर ॥

कठोर भाषा का त्याग

(५६)

पारुष्येण पराङ्मुखा हि पुरुषाः श्रोतुं न वाञ्छन्ति तत् ।
किञ्चातः परमर्मभेदकतया कालुष्यमुत्पद्यते ॥
शान्तेस्तेन बिनाशनं जनगणे वैरस्य वृद्धिस्ततः ।
पारुष्यं परिवर्जनीयमनिशं शिक्षोपदेशादिके ॥

कठिन, विरोधक भाषा को, सुनना न चाहते कभी सुजन ।
किन्तु हृदयवेधक होने से, बढ़ जाती है द्वेष ज्वलन ॥
शांति भंग हो जाती है, अति वैर भाव बढ़ जाते हैं ।
शुभ उपदेशक ऐसी भाषा, मुँह पर कभी न लाते हैं ॥

क्लेश उत्पादक भाषा का त्याग

(५७)

या स्यात् क्लेशविधायिनी जनमनोविक्षेपसन्धायिनी ।
राज्यज्ञातिसमाजधर्मविषयद्रोहस्य सम्पादिनी ॥
धर्मोत्थापनकारिणी विपलताबीजस्य संरोपिणी ।
वाचा सा जनघातिनी सुखहरा वाच्या न सन्तापिनी ॥

राज्य समाज जाति की हो, विद्रोह कारिणी अति निंदित ।
क्लेश बढ़ाने वाली हो, मनको जो करती हो क्षोभित ॥
धर्म नाश करने वाली हो, द्वेष विपलता की हो मूल ।
सुख नाशक, संतापक, घातक, कभी न कहना भाषा भूल ॥

मित भाषण

(५८)

भाषन्ते निजशक्तितोऽधिकतरं वाचालतालम्बिन—
स्तेऽश्रद्धेयतदुक्तयो जनगणे गच्छन्त्यहो लाघवम् ॥
सत्यं तद्वचनं भवेत्तदपि नो केनापि विश्वस्यते ।
तस्मान्नाधिकभाषणं सुप्रुचितं श्रेयोर्थिनां सर्वदा ॥

अपनी शक्ति न लखकर जो, वाचाल बने ही बकते हैं।
गौरव हीन, नीच बनकर वह, पात्र हँसी के बनते हैं ॥
उनके सत्य वचन का कोई, करता फिर विश्वास नहीं।
ज्ञानी जन मित भाषण करते, नहीं बोलते अधिक कहीं ॥

मित भाषण ही भूषण है

(५९)

पृथ्व्या आभरणं जगत्सु पुरुषस्तस्यापि शिष्टो जनः ।
शिष्टस्याभरणं हि सत्यवचनं प्रामाणिकत्वं तथा ॥
तस्याप्याभरणं हितं मितवचः सभ्यत्वरत्नाकरं ।
सेव्यं तन्मितभाषणं सुखकरं सर्वोत्तमं भूषणम् ॥

पृथ्वी के भूषण मानव है, शिष्ट मनुज, मानव भूषण।
केवल मात्र सत्य भाषण है, शिष्ट जनों का आभूषण ॥
हित, मित सुन्दर मिष्ट वचन है, सदा सत्य का आभूषण ।
धारण करो सत्यमित भाषण, सुखकर सर्वोत्तम भूषण ॥

द्वादश परिच्छेद

प्रतिज्ञा निर्वाह

प्रतिज्ञा पालन।

(६०)

एकान्ते जनतान्तिके च विहिता या या प्रतिज्ञोचिता।
निर्वाह्यात्मवलेन सा कथमपि प्रेम्णाऽथ धैर्येण वा॥
लक्ष्मीर्गच्छतु सर्वथा निजजना वैमुख्यमायान्तु वा।
प्राणा यान्तु तथापि दोषजनकं तद्भञ्जनं नोचितम्॥

जो प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से, कभी लिया हो उत्तम प्रण।
पूर्ण आत्म वल, प्रेम, धैर्य से, उसका नित करना रक्षण॥
विमुख वनें प्रियजन चाहे, लक्ष्मी भी जाए चली सकल।
चाहे प्राण भले ही जाएँ, निज प्रण पर रहना निश्चल॥

प्रतिज्ञा लेने के पहिले विचार करलेना चाहिए।

(६१)

निर्वोढुं वलमस्ति मे कियदहो सद्यः शरीरे तथा।
चित्ते चास्ति कियद्वचस्सु भवति ग्राह्यं कियच्चाग्रतः॥
विघ्नानां च निवारणे पुनरलं शक्तिर्मदीया भवे-
न्निश्चित्येदमशेषमेव पुरतः कार्या प्रतिज्ञा बुधैः॥

मैं जो अव यह प्रण लेता हूं, उसे पूर्ण करने को नित्य।
कितना तन, मन, आत्मिक वल है, मेरे कौन सहायक सत्य॥
विघ्न दूर करने की मुझ में, है कितनी सामर्थ्य महान।
इन सब का विचार करने पर, लेते हैं प्रण वुद्धि-निधान॥

प्रतिज्ञा भंग करने की अपेक्षा न लेना ही ठीक है।

(६२)

योग्यायोग्यविचारबुद्धिविकलाः कृत्वा प्रतिज्ञां पुरः।
किञ्चिद्विघ्नपराहता हतधियो मुञ्चन्ति तां सत्वरम्।
ते नीचाः पशवो न मानवपदं चार्हन्ति नूनं मृता-
स्ते मूकास्तु वरा विचारपथगा यैर्न प्रतिज्ञा कृता॥

निज बल का अनुमान न करके, करलेते हैं प्रण जो नर।
उसे त्याग देते हैं फिर जो, थोड़ा संकट आने पर॥
वे नर महा नीच पशुसम हैं, जीते जी हैं मृतक समान।
निर्बल समझ न लेते जो प्रण, वे नर उनसे हैं धीमान्॥

अथ द्वितीय खंड

गर्भ संस्कार।

(६३)

बाले गर्भगते तदीयजननी चेत् सेवते दीनतां।
बालो दीनतरो भविष्यति तदा शूरश्च शौर्ये यदि॥
यद्येषा कलहं करोति नितरां स क्लेशकारी तदा।
तुष्टा स्याद्यदि सा भविष्यति तदा पुत्रः प्रसादान्वितः॥

मां के गर्भ मध्य जब बालक, प्रथम समय में आता है।
मां हो भरी दीनता से तो, पुत्र दीन बन जाता है॥
हो यदि कलह मग्न तो, वह भी कलह द्वेषरत होता है।
यदि आनंद मग्न रहती तो, वह प्रसन्नता पाता है॥

(६४)

धर्मं वाञ्छति गर्भिणी यदि तदा पुत्रो भवेद्धार्मिको ।
भोगान् वाञ्छति चेत्तदेन्द्रियसुखासक्तो विलासी भवेत् ॥
विद्यां वाञ्छति चेत्तदा प्रतिदिनं विद्याभिलाषी भवेत्–
सच्छास्त्रश्रवणं करोति यदि सा पुत्रोऽपि तादृग् भवेत् ॥

रहती हो यदि धर्म निरत तो, धर्मवान वह कहलाता ।
विषय मग्न रहती हो यदि तो, सदा विलासी बन जाता ॥
तत्त्व ज्ञान में हो निमग्न तो, सुत होता तत्त्वज्ञ महान ।
हो यदि शास्त्र निरत तो शिशु भी, बनता श्रुतज्ञानी विद्वान् ॥

बालक के मस्तिष्क का माता के साथ सम्बन्ध ।

(६५)

प्रायो मानवजीवनं वरतरं सद्बुद्धितो जायते ।
सद्बुद्धिस्तु सुसंस्कृताच्छुभतरान्मस्तिष्कतः प्राप्यते ॥
बालस्तन्निजमातुरेव लभतेऽत्राप्तः प्रमाणं परं ।
सा माता यदि नोत्तमा शिशुमतौ श्रेष्ठा कथं संस्कृतिः ॥

नर भव की उत्तमता रहती, सदा सुमति के ही आधार ।
उस सुबुद्धि की उन्नति का भी, मस्तिष्क ही है शुभ द्वार ॥
मस्तिष्क की उन्नति भी है, मां के चरित्र पर निर्भर ।
माता यदि न बुद्धिमती हो, पुत्र न पाता ज्ञान प्रखर ॥

गृह संस्कार।

(६६)

वालो दासकरे नु रक्षणकृते यद्यर्प्यते शैशवे ।
द्वौ दासौ हि भविष्यतः किल ततः संसर्गमाहात्म्यतः ॥
कर्तुं यद्यभिलष्यते कथमपि श्रेष्ठं शिशोर्जीवनं ।
वाल्यादेव सुयोग्यरक्षककरे वालस्तदा योज्यताम् ॥

वालक को मिलता है यदि नित, नीच दास का ही सत्संग ।
वह भी सेवक बन जाता है, चढ़ता कुमति कालिमा रंग ॥
किन्तु योग्य रक्षक का यदि, सत्संग सदा वह पाता है ।
उत्तम प्रकृति, विशुद्ध चरित्र, नर श्रेष्ठ वही बन जाता है ॥

योग्य रक्षक माता ही है।

(६७)

लोके वालकरक्षिकास्ति जननी सा चेद्भवेद् वालिशा ।
पुत्रस्तादृश एव संभवति चेद्दक्षा तदा दक्षिणः ॥
पापिष्ठा यदि सोपि पापनिरतश्चेद्धार्मिकी धार्मिको ।
माता स्यात्खलु यादृशी शिशुरपि प्रायो भवेत्तादृशः ॥

वालक की शुभ भाग्य विधाता, है माता ही अहो महान ।
हो वह पतित क्रूर, निंद्य तो, शिशु बनता पापी अज्ञान ॥
हो यदि धर्मवती माता तो, शिशु भी धर्मवान बन जाता है।
शिशु बनजाता है वैसा ही, जैसी माता पाता है ।

योग्य माता का योग्य पुत्र।

(६८)

यत्राङ्गीक्रियते जनैर्जनपदे स्त्रीणां महत्त्वं मुदा।
शिक्ष्यन्ते महिलाकलाः समुचिताः शिक्षालये ताः पुनः।
सत्कार्यैकपरायणा जनपदोद्धारं विधातुं क्षमा—
स्तद्देशे सुलभा भवन्ति नितरां शीलोत्तमाः सज्जनाः॥

पाती हैं जिन देशों में, महिलाएँ सदा उचित सम्मान।
मिलता अहो! जहाँ पर उनको, समुचित आदर, गौरव, मान॥
नैतिक, धार्मिकज्ञान, सुशिक्षा, मिलती उनको सदा जहाँ।
क्या आश्चर्य! अहो! होते हैं, जो पैदा नररत्न वहाँ॥

घर की शिक्षा।

(६९)

मन्यन्ते खलु मानवाः प्रथमतः शालां सुशिक्षार्पिकां।
मन्येहं जननीं सुशिक्षणकृते योग्या परं शिक्षिता
भित्तेर्मूलमिवादिमा बलवती स्याच्चेत्तदा सा दृढा।
गच्छेदुच्चपदं ततोपि महितं स्थानं न चेदन्यथा॥

कहता है जग, शाला ही है, शिशु को शुभ शिक्षादाता।
पर सच्ची शिक्षादाता है, बालक की केवल माता॥
मां की शिक्षा महा बलवती, बनती है दृढ़ नींव समान।
शाला की शिक्षा उस पर ही, बनती है सुखमय सुस्थान॥

माता और शाला की शिक्षा की तुलना।

(७०)

आद्ये वर्षयुगे शिशोर्भवति यन्मात्रन्तिके शिक्षणं।
न स्याद्वर्षशतेपि शिक्षणमिदं शिक्ष्यस्य शिक्षालये ॥
बाह्यं शिक्षणमेव तत्र हि भवेत्तस्य स्वकालावधि।
सत्यं शिक्षणमान्तरं किल भवेदाजन्मनस्त्वद्धितम् ॥

पहिले दो वर्षों में माता से, शिशु जो शिक्षा पाता।
शाला से सौ वर्षों में भी, नहीं प्राप्त वह कर सकता ॥
अल्प समय को होता है, शाला का अहो ! बाह्य शिक्षण।
अंतरंग शिक्षण माता का, जीवन भर करता रक्षण ॥

सहवास और निरीक्षण का बालक पर प्रभाव।

(७१)

बाल्ये यच्च निरीक्षते निजगृहे कृत्यं शुभं वाऽशुभं।
संस्कारा निपतन्ति बालहृदये शीघ्रं तथैव क्रमात् ॥
निर्माणं मनसस्तथैव भवति प्रायो विचारास्तथा।
चारित्रं च तथैव हेत्वनुसृतं निर्मीयते शैशवात् ॥

बालक जो शुभ अशुभ कार्य, अपने गृह में नित लखता है।
उसका निश्चय संस्कार, उसके मन पर दृढ़ पड़ता है ॥
उन्हीं संस्कारों से उसके, बनते हैं आचार-विचार।
बनता है चरित्र उससे ही, होता है जीवन संचार ॥

तृतीय परिच्छेद

विद्यार्थीकाल

(७२)

प्राप्ते सप्तमवत्सरे शुभतरे यद्वाष्टमे वत्सरे ।
योग्ये वुद्धिवपुर्वले समुचितः वालस्तु विद्यार्जने ॥
ये गर्भे च गृहे वहिश्च जनिताः संस्कारवीजाङ्कुरा-
स्तेषां पापणकृत्यमत्र विकसेच्चेत् सुष्ठु शिक्षाक्रमः ॥

होने लगे वुद्धि विकसित जव, हो जाए शरीर वलवान ।
सप्त तथा हो आठ वर्ष का, जव वालक कुछ वुद्धि निधान ॥
संस्कार के वीज पड़े हों, जो उसके उज्ज्वल मन पर ।
उन्हें वढ़ाने को शुभ शिक्षा, देना सुखकारी हितकर ॥

वालक के वुद्धि पट पर शिक्षा का रंग ।

(७३)

ज्ञानाद्यावरणक्षयोपशमतः प्राप्तो वरो हृत्पटो ।
मात्रादेः शुभयोगतोत्र पतिताः सत्संस्कृतेर्विन्दवः ॥
यावच्चात्र तथापि सुन्दरतरो वर्णः सुशिक्षात्मको ।
नो पूर्येत न तावताऽतिरुचिरो दृश्येत चेतःपटः ॥

ज्ञान क्षयोपशम से वालक का, वना हृदय पट शुभ निर्मल ॥
संस्कार की रेखाएं जो, उस पर पड़ी सदा निश्चल ॥
भरा गया यदि रंग सुशिक्षा का, उससे अति श्रेष्ठ महान ।
तो शिशु का जीवनपट सुन्दर, वन जायेगा प्रभा निधान ॥

शिक्षा पद्धति के भेद ।

(७४)

स्याच्चेच्छिक्षणपद्धतिर्विरहिता धर्मेण नीत्या तदा ।
कृत्याकृत्यविवेकशून्यमतिदा शान्त्युज्झिता राजसी ॥
किं चेयं व्यवहारयोग्यपदवीं नैवाश्रिता तामसी ।
सर्वेषामतिदुःखदा विषभरी वा ऽज्ञानदा संततम् ॥

श्रेष्ठ धर्म से वंचित है जो, नहीं शांति सुख देती है ।
वह गुण हीन राजसी शिक्षा, महा कष्ट कर होती है ।
जिसमें श्रद्धा ज्ञान नहीं है, नीति विवेक नहीं गुणखान ।
वह अति रूक्ष तामसी शिक्षा, विष समान है कष्ट निधान ।

(७५)

या वर्गत्रयसाधिनी व्यवहृतेर्नीतिश्च धर्मस्य वा ।
स्पष्टं मार्गनिदर्शिनी सरलता निःस्वार्थबुद्ध्यर्पिणी ॥
शुभ्रा सत्त्वयुता सदैव सुखदा लोकद्वयार्थप्रदा ।
शिक्षापद्धत्तिरुत्तमा जगति सैवौचित्यमापद्यते ॥

जो त्रिवर्ग की सुख साधक है, धर्म सहित है नीति निधान ।
सत्यमार्ग की दर्शक है, निःस्वार्थ भाव भरती वलवान ॥
विनय सरलता लाती है, दोनों लोकों में है सुखकार ।
वह शालिकी सुशिक्षा जग में, करती है गुण का विस्तार ॥

शिक्षा पद्धति का परिणाम।

(७६)

दुर्नीतिं दुरितं तथा वितनुते विद्याधमा तामसी।
वित्तेहा विविधास्तनोति विषयासक्तिं च या राजसी॥
श्रद्धां रक्षति शिक्षयत्युपकृतिं प्रामाणिकत्वं तथा।
चारित्रं विनयं विशोधयति सा विद्या च या सात्विकी॥

दुखमय महा तामसी विद्या, लेजाती अनीति पथपर।
राजस विद्या लोभ बढ़ाती, देती विषय-वासना भर॥
किन्तु सात्विकी शिक्षा सुखमय, देकर अटल आत्म श्रद्धान।
सत्व नीति के मार्ग चलाती, सदा बढ़ाती चरित महान॥

चतुर्थ परिच्छेद

शिक्षक और शिक्षा

शिक्षक कैसा होना चाहिए।

(७७)

कालोऽयं सफलस्तदा यदि भवेत्प्रामाणिकः शिक्षकः।
सत्याचारविचारकार्यनिपुणः सौजन्यशाली बुधः॥
शिष्याणां हितचिन्तकश्च चतुरश्चित्ते प्रसन्नः सदा।
निःस्वार्थः करुणापरः सहृदयः पूज्यः पवित्रः परः॥

शिक्षक ही है बालक की, शुभज्ञान सफलता का आधार।
हो विश्वासपात्र वह निर्मल, हो उसका आचार-विचार॥
छात्रों का हितचिंतक हो, शुभकार्य निपुण हो कलानिधान।
स्वार्थरहित हो करुण हृदय, गुणवान् पवित्र नीति नयवान॥

(७८)

हृद्बालस्य निरीक्ष्य यं प्रमुदितं प्रेम्णा सुपुष्टं भवे-
च्छ्रोतुं यद्वचनं प्रसन्नमनसो वाञ्छन्ति बालाः सदा ॥
यं शिष्या गुरुभावतो हृदि मुदा मन्यन्त एव स्वतो।
योग्यो बालकशिक्षणे स मनुजो विप्रार्थिवर्गार्चितः ॥

जिसे देख शिशुमन प्रमुदित हो, प्रेम-भावना पूरित हो।
जिसके वचन श्रवण करके, बालक का हृद्दल प्रमुदित हो ॥
दोषरहित जिसको विलोक, गुरुमान करें बालक सन्मान।
वह शिक्षक उत्तम कहलाता, करता है शिशु का कल्याण ॥

योग्य शिक्षक के बिना शिक्षा की निष्फलता।

(७९)

शिक्षा सा सफला भवेत्सुनिपुणैः प्राज्ञैर्जनैर्निर्मिता।
शिष्टो नो यदि शिक्षको भवति सा शिक्षा पुनर्निष्फला ॥
बालाः सन्त्यनुकारिणः प्रकृतितः पश्यन्ति यद्यत्स्वयं।
मान्ये मुख्यजने तथाऽनुकरणे प्रायो यतन्ते स्वयम् ॥

पूर्ण सफलता शिक्षा की, शिक्षक पर ही अवलंबित है।
यदि शिक्षक ही शिष्ट नहीं तो, शिक्षा सब ही निष्फल है ॥
होता है अनुकरण शील शिशु, माननीय निज गुरुजन का।
देख चरित्र ग्रहण करता है, पालन करता है उसका ॥

शिक्षा के विघ्न ।

(८०)

निद्रायां कलहे तथा प्रलपने हास्ये प्रमोदे पुनः ।
क्रीडायां भ्रमणे वृथा विवदने नाट्यादिसम्प्रेक्षणे ॥
चापल्ये विषयेषु यः सुसमयं बाल्ये क्षिपेत्सन्ततं ।
विद्यां साधयितुं क्षमो न स भवेद्भोगी च योगं यथा ॥

करते हैं बकवाद सदा जो, कलह, द्वेष, निंद्रा में मग्न ।
सैर सपाटों में क्रीड़ा में, विषय कामना में संलग्न ॥
चंचल चित्त बने रहते जो, समय व्यर्थ निज खोते हैं ।
वे न कभी विद्या पाते, ज्यों भोगी योग न पाते हैं ॥

शिक्षा के साधन ।

(८१)

एकान्तस्थलसेवनं व्यवहृतौ नैश्चिन्त्यसम्पादनं ।
व्यर्थोपाधिविवर्जनं स्वविषयादन्यस्य नो प्रेक्षणम् ॥
चित्तैकाग्र्यसमर्जनं त्रिकरणैर्वीर्यस्य संरक्षणं ।
योग्यस्यैव सुशिक्षणस्य कथयन्त्यङ्गानि चैवं बुधाः ॥

स्थिरता एकांत भूमि चिंता; विहीन निश्चित विचार
जग प्रपंच से विमुख, भय रहित; वश में होना विषय विकार ॥
ब्रह्मचर्य का दृढ़ रक्षण, एकाग्र चित्त निर्मल आचार ।
योगीसम करना पड़ता यों, विद्या साधन भले प्रकार ॥

पंचम परिच्छेद

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य की रक्षा।

(८२)

कालो वत्सरपञ्चविंशतिमितो विद्यार्थमाजन्मतो ।
मस्तिष्कादिविकाशगात्ररचनाकालोऽपि तावान् पुनः ॥
तस्मिंस्तेन सुरक्षणीयमनघं सद्ब्रह्मचर्य्यव्रतं ।
तद्भङ्गे किल सम्भवन्ति बहवो दोषा महादुःखदाः ॥

रहता है पच्चीस वर्षतक, सुखमय विमल छात्र जीवन।
अंगों का पोषण होता है, होता मस्तिष्क वर्धन ॥
छात्रों को पवित्र भावों से, रखना ब्रह्मचर्य रक्षित ।
जो करते हैं भंग उसे, पाते वह जग में कष्ट अमित ॥

ब्रह्मचर्य भंग से निर्बलता।

(८३)

अन्नाद्रक्तमतोपि वीर्यमुचितं तस्मात्तनोः पोषणं ।
तस्माच्चैव मनोबलं दृढतरं सञ्जायते देहिनाम् ।
तद्वीर्यं यदि रक्ष्यते न मनुजैर्बाल्ये विवाहात्तदा ।
दौर्बल्येन शरीरबुद्धिमनसां शीघ्रं भवेत्संक्षयः ॥

बालक वय से सदा वीर्य का, जो करते रक्षण निर्मल ।
होता उसका सुदृढ़ मनोबल, बढ़ता है शारीरिक बल ॥
बाल विवाह कुठारघात से, होजाता है वीर्य विनष्ट ।
दुर्बल तन निर्बल मन होता, बुद्धि प्रभा होती है नष्ट ॥

वालविवाह का परिणाम ।

(८४)

विद्याभ्यासपरिश्रमेण मनसः संघर्षणञ्चैकतो ।
हानिर्वालविवाहतो ह्यपरतो वीर्यस्य चेज्जायते ॥
मृत्युर्यक्ष्ममहागदः प्रतिपलं सम्प्रेक्षते तत्पथं ।
विद्याशा नु वृथैव येन वपुषो नाशः पुरो दृश्यते ॥ ॥

विद्या पढ़ने के श्रम का, मस्तक पर दृढ़ धक्का लगता ।
वाल विवाह भार पड़ने पर, वीर्य रत्न है लुट जाता ॥
मृत्यु और क्षय रोग वनाते, उस बालक को अपना ग्रास ।
विद्या की आशा क्या उससे, हो जाता है जीवन नाश ॥

वाल-लग्न से हानियाँ ।

(८५)

शक्तिर्नश्यति दैहिकी ह्युरसजं रक्तं द्रुतं शुष्यति ।
दौर्वल्यं हृदये मुखे मलिनता तेजस्तु संलीयते ॥
वुद्धिर्मन्दतरा गतिश्च शिथिला मन्दश्च वैश्वानर-
स्तारुण्ये पलितं तदा भवति हा वाल्येपि वीर्यक्षये ॥

वाल लग्न से विना पके ही, वीर्य क्षीण हो जाता है ।
दुर्वल हृदय क्षीण तन निर्वल, कांति हीन हो जाता है ॥
वुद्धि हीन गतिमंद शिथिल हो, पाचन शक्ति नष्ट होकर ।
श्वेत केशवन यौवन में ही, वृद्ध रूप वन जाता नर ॥

(८६)

गच्छन्तोपि पतन्ति ते प्रतिपदं वार्धक्यरोगौ विना ।
शक्ता गन्तुमलं गृहेपि न मनाक् हस्ते विना यष्टिकाम् ॥
ते स्वल्पेपि परिश्रमे गदभराक्रान्ता भवन्ति द्रुतं ।
येषां वीर्यमलं विवाहकरणाद्विवाहेकाले हतम् ॥

जिसके तन में राग नहीं पर, वृद्ध सदृश जो चलता है ।
विना सहारे लाठी के, दो पैर नहीं चल सकता है ॥
थोड़ा सा श्रम करते ही, हो जाता है शैय्या आधीन ।
यम के आश्रित हो जाता शिशु, बाल लग्न से वीर्य विहीन ॥

बाल विवाह से भविष्य प्रजा को हानियां ।

(८७)

यस्माद्बालविवाहितस्य तनुजाः स्वल्पायुषो रोगिणो ।
मन्दोत्साहबलाः प्रमादबहुला हीना भवन्त्योजसा ॥
नातो बालविवाहपद्धतिरियं स्वानिष्टकृत्केवलं ।
दत्तेऽनिष्टफलं ततोऽधिकतरं किन्त्वत्र तत्सन्ततौ ॥

बाल विवाहित बालक के, यदि होती है कोई संतान ।
रोगी अल्प आयु होती वह, बल उत्साह हीन मुख म्लान ॥
इस पिशाच सम बाल लग्न को, कीजे शीघ्र नष्ट प्रियवर ।
जो संततिका खोज मिटाती, सूना कर देती है घर ॥

षष्ठ परिच्छेद

आरोग्य और मिताहार

आरोग्य।

(८८)

आरोग्यं प्रथमं सुखं निगदितं शारीरिकं सर्वथा ।
न स्याच्चेत्तदनर्थकं हि सकलं राज्यादिकं मन्यते ॥
तत्सत्त्वे परवैभवो भवतु वा मा नो तथापि क्षती-
रत्यं तत्सकलैर्विशेषविधया विद्यार्थिभिस्तूत्कटम् ॥

पहिला सुख निरोग काया है, यह ही है, संपत्ति महान ।
रोगी नर के लिए राज्य सुख, धन वैभव हैं दुःखनिधान ॥
तन निरोग है तो धन वैभव, राज्य हीन भी सब कुछ है ।
छात्रों का शरीर रक्षा ही, सर्व प्रथम सच्चा हित है ॥

आरोग्य के दो भेद ।

(८९)

आरोग्यं द्विविधं मतं सुखकरं स्वाभाविकं कृत्रिमं ।
रोगानुद्भवनोपचारजनितं तत्राद्यमस्त्युत्तमम् ॥
रोगोत्पत्तिरभूत्पुरा पुनरहो भैषज्यपानाशनं ।
तस्माज्जातमनामयं तदपरं नूनं मतं मध्यमम् ॥

स्वाभाविक, कृत्रिम भेदों से, दो प्रकार आरोग्य विधान ।
कभी न रोगों का होना, स्वाभाविक सुख है सदा महान ॥
तन में रोगों के, होने पर, करना शुभ औषधि से नाश ।
यह कृत्रिम आरोग्य अवस्था, है मध्यम आरोग्य निवास ॥

आरोग्य प्राप्त करना अपने हाथ में है।

(९०)

यद्याहारविहारसर्वविषयो द्रव्येण कालेन वा।
रक्ष्यन्ते किल सर्वदा नियमिता क्षेत्रेण भावेन यैः॥
यत्तद्भेषजमश्यते न विषये नासज्यते भूयसा।
रोगाणां नहि सम्भवोऽस्ति वपुषि प्रायस्तदीये क्वचित्॥

द्रव्य क्षेत्र गुण काल जान कर, निज शरीर की प्रकृति विचार।
खान पान नियमित रखते जो, रखते हैं समुचित आचार॥
व्यर्थ नहीं औषधि खाते हैं, होवे कभी न विषयाधीन।
नियम उल्लंघन कभी न करते, रहते हैं वह रोगविहीन॥

मिताहार।

(९१)

कालो यो नियतोऽशनस्य समये तस्मिन्मितं भोजनं।
कार्यं नाधिकमंशतोपि भवतु स्वादिष्टमिष्टाशनम्॥
भुक्तं यत् प्रथमं समस्तमशनं जीर्णं न यावच्च त-
त्तावत्स्वल्पमपि द्वितीयमशनं कार्यं न विद्यार्थिना॥

भोजन करते नियत समय पर, नहीं अधिक भोजन करते।
मिष्ट वस्तु होने पर भी जो, पेट नहीं अपना भरते॥
भोजन प्रथम नहीं पचता, तब तक आहार नहीं करते।
वही मिताहारी विद्यार्थी, शुभ निरोगता को पाते॥

कौन सा भोजन आरोग्य रक्षक है।

(९२)

न स्याच्छीततरं न चातिविकृतं नोन्मादतन्द्राकरं।
नात्यर्थं कफवातपित्तजनकं नो जन्तुयोन्यात्मकम्॥
शास्त्रे यन्न निषिद्धमेवममलं नो तामसं राजसं।
तद्भोज्यं समयोचितं सुखकरं विद्यार्थिनां सर्वथा॥

जो न अधिक ठंडा हो, वर्ण गंध से हो जो नहीं चलित।
नहीं बढ़ाता हो आलस मद, वात पित्त कफ रोग अमित॥
हो न रोक शास्त्रों में जिसकी, हो न तामसी दुखभाजन।
चंचल मन न बनाता हो, है हितकर वही शुद्ध भोजन॥

रोग निवारण करने का प्राथमिक उपाय।

(९३)

यत्किञ्चित्स्खलनादिना यदि भवेत्कश्चिद् गदो जाठरः।
संशुद्धं लघुभोजनं तदपि वा न्यूनं विधेयं रुचेः॥
यद्वोत्साहपुरःसरोपवसनं कार्यं यथाशक्ति वै।
यावच्चैतदुपायतो गदलयस्तावद्धितं नौषधम्॥

कभी भूल से या प्रमाद से, हो जाए कुछ उदरविकार।
तो लघु भोजन करके उसका, करना प्रथम सरल उपचार॥
अति उत्साह युक्त मन से, करना एकाशन या उपवास।
जब तक इससे रोग नाश हो, औषधि के जाना मत पास॥

यदि रोग न मिटे तो क्या करना।

(६४)

दुःसाधा हि भवन्ति भैषजशतै रोगास्तु वृद्धिङ्गता-
स्तेषां स्याच्च कथं पुनः समुचितं शत्रोरिवोपेक्षणम् ॥
कार्यं तत्प्रतिरोधनं परिचितोपायैश्च देश्यौषधै-
र्धर्मभ्रंशकरौषधं तु मनसा नेष्टव्यमिष्टार्थिभिः ॥

रोग शत्रु को कम न समझना, जब वह अति बढ़ जाता है।
तब अनेक ओपधि करने पर, नहीं, नष्ट हो पाता है ॥
देशी ओषधियों से करना, शीघ्र रोग का फिर उपचार।
धर्म भ्रष्ट ओषधि विदेश की, कभी न लेना धर्म विचार ॥

आरोग्य का साधारण ज्ञान।

(६५)

सामान्येन शरीररक्षणविधिर्व्याधेर्निदानं तथो-
पायास्ते बहुधा द्रुतं हितकरा रोगस्य विद्रावणे ॥
एतत्सर्वमनामयार्थमुदितं वृद्धैश्च शास्त्रैस्तथा।
ज्ञेयं तत्सकलैर्जनैः प्रथमतः स्वारोग्यशिक्षाकृते ॥

साधारण शरीर रक्षा के, नियमों का भी रखना ज्ञान।
पैदा होते रोग किस तरह, क्या है उनका उचित निदान ॥
वृद्ध जनों से या शास्त्रों से, कर लेना इसका शुभ ज्ञान।
है कर्तव्य सभी मनुजों का, निज शरीर रक्षा हित मान ॥

सप्तम परिच्छेद

आज्ञा-पालन ।

(९६)

पित्राज्ञा शिरसा सदा हितधिया धार्या सुविद्यार्थिभि-
र्योग्यस्यापि च शिक्षकस्य वचनं नोल्लङ्घनीयं तथा ॥
शिक्षा धर्मगुरोः शुभाशयजुषश्चित्ते निधेया स्थिरं ।
नैतद्भङ्गविचिन्तनं सुखकरं विद्यार्थिनां सर्वथा ॥

सुत हितचिंतक मात पिता की, आज्ञा मस्तक पर रखना ।
शिक्षक के सुयोग्य वचनों को, प्रेम सहित पालन करना ॥
श्रेष्ट धर्म गुरु का शिक्षा रस, विनय सहित मन में भरना ।
इनका नहीं अनादर करना, छात्र धर्म को चित धरना ॥

बड़ों की विनय

(९७)

पूज्या ये जनकादयो गुरुजना ज्येष्ठाश्च सद्बान्धवाः ।
भ्रातस्ते गुरुभावतोऽमलधिया नित्यं प्रणम्या जनाः ॥
तत्पार्श्वे हसनासनप्रलपनं दुश्चेष्टिताशङ्कनं ।
त्वङ्कारादि च सर्वथैव सुजनैस्त्याज्यं सदा श्रेयसे ॥

ज्येष्ट बंधु मां पिता वृद्धजन, माननीय जो निज गुरुजन ।
पूज्य भाव गुरु भाव हृदय रख, करना आदर विनय नमन ॥
उनके सन्मुख हँसी कुचेष्टा, व्यर्थ प्रलाप नहीं करना ।
गर्व वचन भी नहीं बोलना, सदा विनय मन में धरना ॥

वड़ों के सामने वैठने की विधि।

(९८)

तेपामासनतो न चोन्नततरं स्थाप्यं कदाप्यासनं।
दत्त्वा पृष्ठमनासितव्यमथवा पादौ प्रसार्य क्वचित्॥
पल्यङ्कासनमारचय्य विधिना कृत्वा च हस्ताञ्जलिं।
स्थेयं पूज्यजनान्तिके विनयतो विद्यार्थिभिः संततम्॥

गुरु से ऊँचे आसन पर भी, नहीं वैठना कभी कहीं।
उनके सन्मुख पीठ न करना, दिखलाना अभिमान नहीं॥
नहीं वैठना पैर चढ़ाकर, पग फैलाना भी न उचित।
हाथ जोड़ पल्यङ्कासन से, सदा वैठना विनय सहित॥

अष्टमपरिच्छेद। (सह पाठियों के साथ वर्ताव)

सहपाठियों के साथ प्रेम।

(९९)

शालायां सहवर्तिनः सहृदयाः स्युर्ये सहाध्यायिनो।
मान्यास्तेपि सहोदरा इव सदा प्रेम्णा प्रमोदेन वा॥
कार्यो नैव कदापि तैस्तु कलहो नेर्ष्यालवो मानसे।
चित्ते नो परिचिन्तनीयमशुभं तेषाञ्च विद्यार्थिना॥

सहपाठि कत्ता में जिनका, एक साथ रहता पढ़ना।
वंधु सदृश उनको लख करके, प्रेम भाव नित ही रखना॥
द्वेप क्लेश मत्त कभी चढ़ाना, कलह भाव लाना न कहीं।
नहीं अशुभ चिंतन करना, लाना विरोध का भाव नहीं॥

गुणों का व्यवहार।

(१००)

ये स्युस्तेषु गुणोत्तमाः कथमपि ग्राह्यास्तदीया गुणा।
ये स्युर्न्यूनगुणाः स्वयं हितधिया कार्या गुणाढ्याश्च ते॥
एवं स्वीकरणं तथा वितरणं कार्यं सहाध्यायिभि—
र्दोषाणां तु बहिष्क्रिया व्यवहृतावस्यां विधेया ध्रुवम्॥

जो निज से गुणों में उत्तम हैं, उनसे गुण शिक्षा लेना।
हां यदि कुछ गुण हीन छात्र तो, उन्हें सदा निजगुण देना॥
गुण लेकर अपने गुण देकर, गुण का करना नित्य प्रचार।
दोषों को बाहर निकाल कर, सद्गुण का करना संचार॥

नवम परिच्छेद

समय का मूल्य।

(१०१)

वस्त्राभूषणवित्तरत्नमणितः कालो महार्घो यतः।
प्राप्यन्ते विगतानि तानि च पुनः कालो गतो नाप्यते॥
मत्वैवं व्यसने प्रमादकरणे निद्रा प्रलापेषु वा।
शोके वा समयोपि निष्फलतया नेयो न विद्यार्थिभिः॥

भूषण, वस्त्र, रत्नमणियों से, मूल्य समय का अधिक महान।
मणि रत्नादिक खोजने पर, फिर मिल जाते हैं सुखदान॥
लाख यत्न करने पर भी फिर, गया समय मिलता न कहीं।
निद्रा, आलस, व्यसन, वाद में, उसको खोना व्यर्थ नहीं॥

समय की वचत किस तरह करना।

(१०२)

यत्कार्यं नियतञ्च यत्र समये प्रामङ्गिकं दैनिकं।
तत्रैव क्रियते क्षणे यदि तदा तत् स्याद्व्यवस्थायुतम् ॥
एवं कार्यपरम्परापि सकला सिद्ध्येद्यथेष्टं क्रमा-
द्धर्मायाप्यवशिष्यते सहजतः कालो हि विद्यार्थिनाम् ॥

कार्य नित्य जो करना पड़ते, उनका रखना उचित विभाग।
नियत समय पर करना उनको, दृढ़ता से रखकर अनुराग ॥
आलस से प्रमाद से उसमें, हेर फेर करना न कभी।
धर्म तथा परमार्थ कार्य में, समय लगाना शेप सभी ॥

समय की छानवीन

(१०३)

आस्तां कार्यभरस्तथापि वद नो धर्माय कालो न मे।
तस्मै नास्ति यदाल्पशोपि समयो व्यर्थं तदा जीवनम् ॥
कृत्वा हस्तगतं क्षणं कथमपि श्रेयःपथप्राप्तये।
सेव्यो धर्मविधिः शुभःप्रतिदिनं प्रेम्णा हिताकाङ्क्षिणा ॥

'नहीं धर्म के लिए समय' हो, कार्य मग्न यह मत कहना।
नहीं वचाया समय धर्म हित, तो है व्यर्थ जन्म खोना ॥
थोड़ासा भी समय वचाकर, प्रति दिन धर्म कार्य करना।
निज हित की इच्छा रखकर, कल्याण मार्ग पर नित चलना ॥

दशम परिच्छेद (व्यसन निषेध)

व्यसनों से हानि।

(१०४)

सर्वाणि व्यसनानि दोषनिकराऽऽकाराणि हा दुर्धिया-
मुत्कृष्टं हि हठाद् हरन्ति समयं स्तेना यथा सम्पदम् ॥
द्यूतादीनि विनाशयन्ति नितरामुत्कृष्टकार्याण्यतो ।
नैष्टव्यानि कदापि सेवितुमधःपातप्रदान्यर्थिभिः ॥

दोषों के भंडार व्यसन हैं, देते हैं आपत्ति महान ।
समय और धन को हरते हैं, देते हैं अपयश, अपमान ॥
करते हैं विनाश जीवन का, शुभ कार्यों को शत्रु समान ।
कभी न इनका सेवन करना, अगर चाहते हो कल्याण ॥

जूआ।

(१०५)

निःशेषव्यसनाश्रयं सुचरितद्वारार्गलो निश्चलो ।
योग्यायोग्यविचारदृष्टितिमिरं सद्धर्मविध्वंसकम् ॥
चित्तव्याकुलताकरं शमहरं दुष्टाशयप्रेरकं ।
त्याज्यं दुर्गुणमात्रमूलमफलं द्यूतं हिताकाङ्क्षिभिः ॥

सब व्यसनों का पिता जुआ है, धर्म द्वार को सांकल सम ।
चरित विनाशक, सद्विवेक, नेत्रों के लिए घोर है तम ॥
मन को व्याकुल करने वाला, दुष्टभाव भरता प्रतिदिन ।
शांति विनाशक दृढ़ दुर्गुण है, कभी नहीं करना सेवन ॥

जूवे से हानि ।

(१०६)

विद्या तस्य विलीयते वरतरा प्रज्ञा न संतिष्ठते ।
नैपुण्यं नितरां विनाशपदवीं प्राप्नोति नीत्या सह ॥
उद्योगोस्तमुपैति नश्यति यशः पुण्यप्रभावोद्भवं ।
द्यूते दारुणदुःखजालजनके यस्य प्रसक्तं मनः ॥

विद्या शीघ्र नष्ट हो जाती, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ।
दूर निपुणता हो जाती है, नीति न रहने पाती है ॥
कर जाता उद्योग पलायन, पुण्य प्रभाव सुयश जाता ;
दुःखों की जड़ द्यूत व्यसन को, ज्ञानी कभी न मन लाता ॥

जूए की संपत्ति ।

(१०७)

दारिद्र्यं दुरतिक्रमं सहचरं यस्यास्ति मित्रं परं ।
दौर्भाग्यं दुरितोद्भवं त्वनुचरं दासी बुभुक्षा परा ॥
धिग्धिक्त्वामिति तर्जना जनकृता यस्यास्ति निर्घोषणा ।
तद्द्यूताधिकृतिं महोन्नतिपदं त्यक्तुं हि कः शक्नुयात् ॥

है जिसका दारिद्र्य मित्र, कठिनाई से जीता जाता ।
सेवक है दुर्भाग्य महाभट, दासी क्षुधा मोद दाता ॥
जनता कृत धिक् धिक् तर्जन ही, है जिसकी घोषणा महान ।
जुआ व्यसन अधिकारी त्याग न, सकता यह वैभव सुख दान ॥

जुआरी का घर और दारिद्रय।

(१०८)

हे दारिद्रय ! निरीक्षते किमु भवान् पश्यामि मित्राणि भोः।
तानि ब्रूहि च कानि भोः शृणु सखे दुःखं पुनर्दुर्दशा ॥
दौर्भाग्यं दुरितञ्च दैन्यमतुलं स्युस्तानि कुत्राधुना ?
मन्ये द्यूतगृहे वसेयुरधुना तत्रैव यास्याम्यहम् ॥

देख रहा दारिद्रय अरे क्या ? मेरे मित्र कहां है स्थित।
मित्र कौन हैं ? सुनो ! दुःख, दुर्भाग्य दुर्दशा दैन्य दुरित ॥
भाई तेरे यह दकार युत, मित्र कहाँ पर करते वास।
जूआ व्यसन जहाँ होता है, करते हम सब वहीं निवास ॥

जूवे के कारण घोर विपत्ति।

(१०९)

द्रौपद्याः पतिसन्निधौ नृपसभामध्ये पटाकर्षणं।
यच्चाभूदधिकारतो निरसनं तस्याः पतीनां पुरः ॥
राज्याद्यत्स्खलनं वने च गमनं पत्न्या नलस्याभव-
त्तत्सर्वं तव विक्रमेण कलितं रे द्यूत कस्त्वत्समः ॥

भरी सभा में पति के सन्मुख, हुआ द्रौपदी चीर हरन,।
राज्य भ्रष्ट हो नृपति युधिष्ठिर, फिरे घूमते घोर वीपन ॥
खोकर राज्य फिरे नल वन में, नंगे पद दमयंती साथ।
यह सब तेरा ही प्रताप है, द्यूत सभी व्यसनों के नाथ ॥

जुआरी मंडल।

(११०)

युष्माकं कतमो महानहमहं चेत्यत्तशौण्डा जगुः।
कोटिद्रव्यपतिः पिताऽहमधुना भित्ताचरोऽतो महान्॥
तातो मे सचिवः पणेऽहमभवं चर्णी ततोऽहं महान्।
रे न्यस्तं सह भार्ययाखिलधनं द्यूते ततोऽहं महान्॥

मैं हूं सबसे बड़ा पिता थे, मेरे क्रोड़पती धनवान।
जूए में खो सारी संपति, लेता हूं मैं भित्ता दान॥
नहीं, मैं बड़ा, पिता सचिव थे, उनका सारा ही धन हार।
दिया नारि को चढ़ा दाव पर, देखो मेरा साहस यार॥

एकादश परिच्छेद।

मांसाहार निषेध।

(१११)

दृश्यन्ते द्विविधा जगत्यसुभृतोऽन्नादाश्च मांसाशना।
दन्तस्वेदनखज्वरादिषु यतः स्पष्टोऽस्ति भेदोऽनयोः॥
साम्यं तेन फलाशिभिः सह नृणां मांसाशिभिर्नो पुन-
स्तस्मान्नैव कदापि तत्समुचितं नृणां नु मांसाशनम्॥

मांसाहारी, अन्न अहारी, दो प्रकार जग जीव विधान।
दांत पसीना नख ज्वरादि से, दोनों में है भेद महान॥
मांसाहारी पशु के अवयव, कभी न नर जैसे होते।
ज्ञानी मानव पशु समान बन, मांस नहीं भत्तण करते॥

मांसाहार का फल ।

(११२)

व्यक्ता मानसवेदनास्ति विपुला येषां खलु प्राणिनां ।
तेषां छेदनभेदनात्मकमहाक्लेशेन यज्जायते ॥
संस्कारैः पशुदुर्दशासमयजैः श्लिष्टश्च यद्वर्तते ।
तन्मांसं विकृतिं गतं गदकरं भक्ष्यं कथं स्यान्नृणाम् ॥

मांस प्राणवध से होता है, पाता है पशु कष्ट निदान ।
छेदन भेदन द्वारा होता, उसको क्लेश, विरोध महान ॥
विकृत निंद्य मांस में उसका, वह सब संस्कार पड़ता ।
रोगों का घर बन जाता वह, क्रोध, द्वेष मन में भरता ॥

मांस से दूध में विशेष पौष्टिक तत्त्व ।

(११३)

तत्त्वं पुष्टिकरं यदस्ति सुलभे दुग्धादिके सात्त्विके ।
मांसे नास्ति च दुर्लभेपि तदिदं दुग्धान्महार्घे पुनः ॥
दुग्धोत्पत्तिकृतेऽङ्गिनां न हननं भीतिश्च नोत्पद्यते ।
मांसोत्पत्तिरनल्पदुःखजनिका त्याज्यं ततस्तन्नृणाम् ॥

जो अति पौष्टिक तत्त्व दुग्ध में, सुलभ, सात्विक होता है ।
नहीं मांस में कभी कहीं वह, तत्त्व पौष्टिक मिलता है ॥
नहीं किसी निर्दोष जीव का, कभी दुग्ध में वध होता ।
महँगे दुख कर निंद्य मांस को, मूढ़ मनुज फिर क्यों खाता ॥

मांसाहार के लिए मरती गायों की उपयोगिता।

(११४)

या दुग्धं वितरन्ति तक्रदधिनी आज्यञ्च नृभ्या भृशं।
यासां सन्ततिमन्तरेण न भवेत्कृष्यादिकार्यं क्वचित् ॥
यद्वत्सा जनभारवाहकतया ख्याता धरामण्डले।
मांसाहारकृते नृणां किमुचितः शस्त्रेण तासां वधः ॥

पौष्टिक दुग्ध दान करती जो, देती हैं दधि, घी, मक्खन।
जिनकी संतति बैल सदा ही, करती खेती कार्य कठिन ॥
कठिन भार को जिसके बच्चे, पृथ्वी पर लेकर फिरते।
उन उपयोगी गायों का, निर्दय हा! कैसे वध करते ॥

द्वादश परिच्छेद

मदिरा।

(११५)

योन्मादं जनयत्यपि स्वपरयोर्विस्मारयत्यन्तरं।
मस्तिष्कं भ्रमिमद्विवेकविकलं चित्तं करोति क्षणात् ॥
दारिद्र्यं ददते तथा वितनुते लज्जाप्रतिष्ठाक्षयं।
सा योग्या नहि लेशतोऽपि मदिरा स्पर्शाय पानाय वा ॥

करदेती उन्मत्त जीव को, निज पर ज्ञान भुलाती है।
हरलेती विवेक क्षण भर में, चंचल चित्त बनाती है ॥
लाती है दरिद्रता कुल लज्जा; मर्यादा करती है नष्ट।
मदिरा का तो पीना ही क्या! छूना तक भी कभी न इष्ट ॥

शराबी की दुर्दशा ।

(११६)

एषां पश्यत भोः सुराव्यसनिनां दुःखान्वितां दुर्दशां ।
गच्छन्तोपि पतन्ति दृष्टिविकला मार्गे किलेतस्ततः ॥
अज्ञानात्प्रलपन्त्यसङ्गतमथाऽव्यक्तश्च तुच्छं वचो ।
दण्डादण्डि परस्परं विदधते निष्कारणं बालिशाः ॥

मदिरा पीने वाले नर की, देखो तो दुर्दशा महान ।
गिरते पड़ते जाते हैं वह, विकल हुए पथ में अज्ञान ॥
अरे ! अनगेल बकते हैं वह, गाली भरे वचन दुखकार ।
लड़ते भिड़ते मूर्ख परस्पर, करते हैं हा ! दंड प्रहार ॥

शराब से चतुर मनुष्यों की हीनता ।

(११७)

दक्षा अप्यधुनाऽतिशून्यहृदयाः स्वं रक्षितुं न क्षमा ।
दृश्यन्ते परतन्त्रतामुपगता घ्नन्तः कलत्रादिकम् ॥
छिन्दन्तो वसनादिकं विकलवत्ते वञ्च्यमानाः परैः ।
क्लिश्यन्ते मदिरामदाहतधियो हा हा वराका नराः ॥

यह भारी विद्वान् मद्य पी, शून्य हृदय अति दीन हुए ।
पागल से परतन्त्र घूमते, फिरते हैं मतिहीन हुए ॥
वस्त्र फाड़ कर फेंक रहे हैं, चोर ले रहे द्रव्य निकाल ।
बुद्धि हीन हो मदिरा मदसे, पाते हैं दुख कठिन कराल ॥

द्वारिका, यदुकुल और मदिरा।

(११८)

ख्यातं भारतमण्डले यदुकुलं श्रेष्ठं विशालं परं।
साक्षाद्देवविनिर्मिता वसुमतीभूषा पुरी द्वारिका॥
एतद्युग्मविनाशनञ्च युगपज्जातं क्षणात्सर्वथा।
तन्मूलं मदिरा तु दोषजननी सर्वस्वसंहारिणी॥

वह भारत प्रसिद्ध यादवकुल, कीर्तिमान था श्रेष्ट अनूप।
देवों द्वारा रची द्वारका, पृथ्वी की थी भूषण रूप॥
मदिरा के कारण ही क्षण में, हाय होगए दोनों नष्ट।
सर्व ध्वंसिनी दोषों की जड़, मदिरा सेवन कभी न इष्ट॥

मदिरा से राज्य भ्रष्ट और क्षय रोग।

(११९)

भ्रष्टा भूपतयोपि राज्यपदतो मद्यस्य पाने रताः।
केचिद्राज्यपदे स्थिता अपि पराधीनत्वमापुस्तराम्॥
केचित्सत्त्वपराभवात्प्रतिदिनं क्लिश्नन्ति मद्याशिनः।
केचिन्मृत्युपदं क्षयामयहता हा हा लभन्ते द्रुतम्॥

मद्यपान से कितने ही नृप, राज्य भ्रष्ट होगए अहा।
रहे राज्यपद में स्थित तो, पराधीन ही रहे महान॥
शक्तिहीन बन अहो! किसीने, क्लेश निरंतर सहा प्रधान।
क्षय रोगी बन काल गाल में, गए अनेकों नृप अज्ञान॥

त्रयोदश परिच्छेद (वेश्या-गमन)

वेश्यागमन निषेध।

(१२०)

धूर्तो वञ्चयितुं सदा प्रयतते या स्वार्थमग्ना सती।
मायापाशनिपातनेन कुरुते मुग्धानधीनान्स्वयम् ॥
हृत्वैषां सकलं धनं पुनरियं नष्टे धने द्वेष्टि तान्।
संसर्गः सुखनाशकोस्ति नियतस्तस्या हि वारस्त्रियाः ॥

स्वार्थ साधनों में रत रहती, वंचकता में महा प्रवीण।
मायाजाल बिछाकर करती, मुग्ध पुरुष को निज आधीन ॥
धन हरकर निकाल देती है, फिर न देखती उसे कहीं।
सुख नाशक वेश्या की संगति, ज्ञानी करते कभी नहीं ॥

वेश्या संगति का फल

(१२१)

वेश्यासङ्गतितो विनश्यति यशो नृणां प्रतिष्ठावतां।
लज्जापि प्रविलीयते तनुबलं स्वास्थ्यञ्च संक्षीयते ॥
मानख्यातिधनं प्रणश्यति तथा प्राणैश्च सन्त्यज्यते।
धर्मो ध्वंसमुपैति नश्यति नयस्तस्मादसौ हीयताम् ॥

वेश्या संगति से यश जाता, नष्ट प्रतिष्ठा हो जाती।
शक्ति स्वास्थ्य भी नहीं ठहरता, लज्जा क्षण में खोजाती ॥
मान ख्याति धन दूर भागता, मिट्टी में मिल जाता धर्म।
प्राण नाश भी हो जाता है, वेश्या-सेवन महा कुकर्म ।

चतुर्दश परिच्छेद (परस्त्रीगमन)

पर स्त्री गमन का त्याग ।

(१२२)

वेश्यावत्परकीयदारगमनं शास्त्रे निषिद्धं भृशं ।
यस्मात्तद्वितनोति दुःखमनिशं मानप्रतिष्ठापहम् ॥
शुद्धे चापि कुले कलङ्कनिकरं विस्तारयत्यञ्जसा ।
वैरं वर्द्धयते भयं च कुरुते हन्त्यात्मनः सद्गतिम् ॥

वेश्या सम पर नारी भी है, शास्त्र विरुद्ध महा पातक ।
कर देती है नष्ट प्रतिष्ठा, देती निशदिन कष्ट अधिक ॥
कुल कलंक इसे लगता है, वढ़ता, भय, विद्वेष अपार ।
प्राण नष्ट भी हो जाता है, परनारी पैनी तलवार ॥

पर-स्त्रीगमन का फल ।

(१२३)

हा नष्टः सह लङ्कया जितवलः सीतारतो रावणो ।
द्रौपद्या हरणेन दुःखमधिकं प्राप्तश्च पद्मोत्तरः ॥
भ्रातृस्त्रीनिरतो मृतो मणिरथो हत्वा निजं भ्रातर—
मन्यस्त्रीरमणोद्यता हतनया ध्वस्ता महान्तो न के ॥

सीता के हरने से रावण, लंका सहित विनष्ट हुआ ।
द्रौपदि के हरने से, पद्मोतर को भारी कष्ट हुआ ॥
भ्रातृवधू रत भाई को हत, मणिरथ हुआ मृत्युआधीन ।
परनारी रत कौन महा नर, हुए न दुख सागर में लीन ॥

पंचदश परिच्छेद व्यसननिरोध (चोरी और शिकार)

चोरी ।

(१२४)

निर्मूल्यं वहुमूल्यमल्पमधिकं वस्त्वन्यदीयं भवे—
देकान्ते पतितं क्वचित्तदपि नो ग्राह्यं विना सम्मतिम् ॥
ज्ञेयं प्रस्तरवत्सदा परधनं नोचेन्महानर्थदं ।
नैष्टव्यं मनसापि तस्करतया श्रेयोर्थिभिस्तत्सदा ॥

वस्तु किसी को मूल्यवान, या अल्प मूल्य की हो किंचित् ।
शून्य धाम में पड़ी हुई हो, लेना नहीं विना सम्मति ॥
पर का धन मिट्टी सम लखकर, नहीं स्वप्न में भी लेना ।
यह ही है कल्याण मार्ग शुभ, इसपर सदा ध्यान देना ॥

शिकार ।

(१२५)

निर्वैरा निवसन्ति ये मृगगणा रम्ये महाकानने ।
तेषां प्राणहरा किलास्ति मृगया क्रीडा कथं सा भवेत् ॥
यत्रैकस्य महाव्यथा भवति तच्चान्यस्य किं कौतुकं ।
नृणां तद्व्यसनं कथं समुचितं प्राणिव्यथाकारकम् ॥

वैर विरोध रहित रहते जो, कानन में निर्भय मृगगण ।
पापीजन उनका शिकार मिस, करते हैं हा ! प्राणहरण ॥
प्राण नष्ट होते जिससे, क्यों क्रीड़ा उसे समझते हैं ।
घातक प्राण व्यसन को कैसे ! उचित मूढ़ नर कहते हैं ॥

षोड़श परिच्छेद (उपव्यसन)

अफ़ीम ।

(१२६)

स्रस्तं गात्रमिदं गतिं न सहते स्थातुं च नोत्कण्ठते ।
शुष्के मांसवसे बलं विगलितं नेत्रे च निद्रापरे ॥
भोः किं रोगसमुद्भवा स्थितिरियं मित्रास्ति रोगो न मे ।
किन्त्वाफूकवशाद्दशेयमधुना जज्ञे विपादप्रदा ॥

अरे मित्र ! क्यों क्षीण हुआ तन, चलने का क्यों रहा न बल ।
शून्य नेत्र, सूखा निर्बल तन, नेत्र नींद से हैं बेकल ॥
हुआ कौन सा रोग मित्रवर ! नहीं ! मुझे कुछ रोग न मित्र ।
थोड़ी सी अफ़ीम लेता हूं, दशा इसी से हुई विचित्र ॥

(१२७)

मा खिद्यस्व सखे दशां मम शृणु त्वत्तो विशिष्टामिमां ।
देहे दुर्बलतादिकश्च यदिदं तत्तु स्वयं पश्यसि ॥
आसन् भूरिफला भुवो बहुधनं रत्नादिसंपच्च मे ।
तत्सर्वं त्वहिफेनतो व्यपगतं नान्नं गृहे लभ्यते ॥

खेद करो तुम मित्र ! न मन में, देखो मेरी तनिक दशा ।
तुझसे भी निर्बल शरीर है, रक्त न तनमें, वीर्य नशा ॥
धन वैभव था सब कुछ मुझपर, जब तक था यह नशा नहीं ।
नष्ट हुआ अफ़ीम खाने से, मिलता अन्न न मुझे कहीं ॥

(१२८)

एतस्याभ्यसनं कृतं बहु मया सौख्याशया भत्युत ।
प्राप्तं दुःखमनेकधाऽभिलषितं सौख्यं तु दूरे गतम् ॥
तत्त्यागाभिरुचिर्भवत्यपि पुनस्त्यक्तुं न तच्छक्यते ।
यत्पूर्वं न विचिन्तितं फलमिदं तस्यैव नीचैस्तराम् ॥

हा ! निरोगता सुख इच्छा से, मैं अफ़ीम खाता था नित ।
सुख तो मुझ से दूर हुआ अब, मिला मुझे दुख हाय अमित ॥
करता हूँ तजने की इच्छा, पर न छोड़ सकता यह पाप ।
रोता हूँ निज मूर्ख दशा पर, करता हूँ नित पश्चाताप ॥

विद्यार्थियों के ग्रहण करने योग्य उपदेश ।

(१२९)

श्रुत्वैतद्व्यसनं विनाशसदनं दृष्ट्वा तदीयां क्षतिं ।
किं वाञ्छेत्कुशलो हि दुःखजनकं स्वीकर्तुमेतत्स्वयम् ॥
ज्ञात्वाप्येवमिदं समाश्रयति यो नीचः परं दुर्मति-
राकृत्या स नरोऽपि दुर्भगजनिर्ज्ञेयः खरः पामरः ॥

सुना उक्त संवाद छात्र गण, है अफ़ीम का बुरा नशा ।
धन हर लेता, तन क्षय करता, हायबनाता बुरी दशा ॥
जो दुर्मति इस के वश होता, बन जाता वह पशु सम दीन ।
यदि तुम अपनी कुशल चाहते, मत होना इसके आधीन ।

तमाखू।

(१३०)

कासश्वासविवर्द्धको विषमयो दुर्गन्धभारोत्कट—
श्चक्षूरोगविधायकोऽपि च शिरोभ्रम्याद्यनर्थावहः ॥
द्रव्यापव्ययकारकश्च हृदये मालिन्यसम्पादकः ।
श्रेयःकार्यविघातको हितधिया त्याज्यस्तमाखुः सदा ॥

खांसी श्वास बढ़ाने वाली, दुर्गंधित, विष से परिपूर्ण ।
नेत्र रोग को नित्य बढ़ाती, कर देती मस्तक भ्रमपूर्ण ॥
हृदय मलिन अति निंद्य बनाती, हर लेती है सारा धन ।
श्रेष्ठ कार्य नाशक तम्बाकू, कभी नहीं पीते सज्जन ॥

तमाखू की ओर पशुओं की घृणा

(१३१)

पत्राण्यस्य गवादयोऽपि पशवो जिघ्रन्ति नो लेशतो ।
नाश्नन्ति क्षुधयापि पीडिततरा भोज्येच्छया क्वापि वा ॥
हा त्यक्तं पशुभिः सदापि मनुजा बुध्वा प्रकृष्टं गुणं ।
वाञ्छेयुः किमु तं तमाखुमशितुं घ्रातुञ्च पातुं पुनः ॥

गाय, बैल, पशु आदि, भूख से, व्याकुल भी हों अगर कहीं ।
खाने की तो बात भला क्या, छूते तक भी कभी नहीं ॥
जो पशु से भी त्यक्त सदा है, घृणित तमाखू, निंद्य व्यसन ॥
बुद्धिमान् गुणवान मनुज क्यों, करते हैं उसका सेवन ॥

तमाखू की भ्रष्टता ।

(१३२)

यत्स्पर्शोपि विधीयते न सुजनैः शास्त्रे निषिद्धो बुधै—
र्यत्पत्राणि च तादृशोऽधमजनाः सिञ्चन्ति गण्डूपया ॥
तं भ्रष्टत्वकरं तमाखुमधमं सेवध्व आर्या अहो ! ! ।
आर्यत्वं क गतं क चाभिजनता ख्याता क नीतिर्गता ॥

उत्तम जन छूते न जिन्हें, हैं शास्त्र निषिद्ध नीच कुलवान ।
मुँह के पानी से पत्तों को, सदा सींचते वह अज्ञान ॥
ऐसी निंदित भ्रष्ट तमाखू, खाते पीते आर्य अनेक ।
कैसे उनको घृणा न आती, कहाँ हृदय का गया विवेक ॥

तमाखू में धन का दुरुपयोग ।

(१३३)

पुण्यार्थं तु वराटिकाऽपि सहसा दीनाय नो दीयते ।
दत्ता चेज्जनलज्जया मनसि तत्तापः पुनर्जायते ॥
तादृक्तैः कृपणैरपि प्रतिदिनं कार्षापणानि द्रुतं ।
दीयन्ते ऽत्र तमाखवे नहि फलं हा वैपरीत्यं कियत् ॥

पुण्य समझ दीनों को देते, कभी न पाई का जो दान ।
लज्जा से यदि दे देते तो, करते पश्चाताप महान ॥
किन्तु तमाखू हेतु कृपण वह, पैसों का व्यय करते नित्य ।
जिससे होता लाभ न कुछ भी, देखो है कैसी दौर्मत्य ॥

तमाखू के व्यर्थ व्यय का हिसाब।

(१३४)

व्यक्तेर्वात्सरिकोऽस्ति पंचदश वा मुद्रास्तमाखोर्व्ययः ।
सामस्त्येन तु भारते भवति हा कोटेः परस्तद्व्ययः ॥
तज्जातादनलादितोऽऽपरिमितद्रव्यक्षयो जायते ।
राष्ट्रीयार्थिकदृष्टितोऽप्यहितकृत्सेव्यस्तमाखुः कथम् ॥

दो पैसे से एक वर्ष में, पंद्रह रुपये व्यय होते ।
इस प्रकार दो क्रोड़, द्रव्य, माचिस तम्बाकू में खोते ॥
नित्य आग लगने से होता, द्रव्य अपरिमित नष्ट अहो !।
द्रव्य द्रष्टि से कभी तमाखू, क्या है पीने योग्य कहो ? ॥

तमाखू में क्या गुण है।

(१३५)

किं स्वादोऽस्ति कषायपत्रविटपे द्राक्षासिताम्रेष्विव ।
जातीकुन्दलतादिपुष्पसदृशो गन्धोऽस्ति किं तत्र भो ॥
किं वा शैत्यगुणश्चमत्कृतिकरो रूपं मनोज्ञं किमु ।
नो चेदन्धतया गतानुगतिके तस्माद् वृथा गच्छथ ॥

घृणित ! तमाखू पीने में क्या ! मधुर द्राक्ष का मजा कहो ।
जुही केतकी की आती क्या उसमें उत्तम गंध अहो ॥
चंदन की शीतलता देती, या मनोज्ञ है उसका रूप ।
अंधे बन क्यों, भेड़ चाल चल, गिरते अरे व्यसन के कूप ॥

छोटे व्यसनों का त्याग।

(१३६)

च्हा-गाञ्जोचरसेति गुर्जरगिरा ख्यातञ्च भङ्गादिकं।
किञ्चिन्मोहकमप्यपायजनकं भक्ष्यं न पेयं तथा॥
कृत्वैतस्य पुनः पुनः प्रतिदिनं संसेवनं सादरं।
को नाभूद्व्यसनी विवेकविकलो निन्द्यो दरिद्रः पुनः॥

भंग, चरस, गांजा, चा का भी, करने से प्रति दिन सेवन।
पुनः पुनः सेवन करने से, लग जाता है महा व्यसन॥
इसके व्यसन जाल में पड़कर, क्षय हो जाता ज्ञान विवेक।
मूर्ख, दरिद्री होकर पाते, मनुज अंत में कष्ट अनेक॥

समय के लुटेरे, नाटक, नाच और राग रंग।

(१३७)

यन्नृत्यं समये वृथाऽपहरते चित्तं करोत्याकुलं।
यन्नाट्यं प्रहिणोत्यनीतिपदवीं संपश्यतो मानवान्॥
यत्केलिः सफलोद्यमे वितनुते विघ्नं मनोऽव्यग्रतां।
तत्सर्वं धनमाननाशजनकं नैष्टव्यमिष्टार्थिभिः॥

घृणित नृत्य, कर नष्ट समय को, मन में भरता दुरित विकार।
कुत्सित नाटक विषय भावना, भर देता अनीति अविचार॥
करता उद्यम नष्ट व्यग्रता, लाता राग रंग अनुराग।
यह सब धन यश के नाशक हैं, हित इच्छुक नर करते त्याग॥

उपसंहार । (१३८)

इत्थं यो विनयं विवेकसहितं धृत्वा शुभाज्ञां गुरो--
स्त्यक्त्वा दुर्व्यसनं तथैव विफलां क्रीडां प्रमादं पुनः ॥
आरोग्याय विधाय भोज्यनियमं सद्ब्रह्मचर्य्यं तथा ।
विद्यां सञ्चिनुते स एव विजयी कृत्ये द्वितीये भवेत् ।

विनय, विवेक समेत युवक जो, गुरु आज्ञा सिर पर धरते ।
दुर्व्यसनों के निकट न जाते, क्रीड़ा में न मन रखते ॥
नियमित भोजन करते हैं जो, ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहते ।
पढ़ते विद्या, गृह जीवन में, वह ही पूर्ण सफल होते ॥

तृतीय खंड

द्वितीयावस्था में प्रवेश

गृहस्थ की मर्यादा ।

(१३९)

यावन्नार्जयते धनं सुविपुलं दारादिरक्षाकरं ।
यावन्नैव समाप्यते दृढतरा विद्याकला वाश्रिता ॥
यावन्नो वपुषो धियश्च रचना प्राप्नोति दार्ढ्यं परं ।
तावन्नो सुखदं वदन्ति विबुधा ग्राह्यं गृहस्थाश्रमम् ॥

निज पत्नी रक्षा हित द्रव्य, कमाता नहीं विपुल जब तक ।
बुद्धि न विकसित हुई कला विद्या, भी नहीं विमल जब तक ॥
हुई नहीं शारीरिक दृढ़ता, नहीं अपरिमित बल जब तक ।
होता नहीं सौख्य कारी कुछ, गृह प्रवेश करना तब तक ॥

अङ्ग विकास की मर्यादा।

(१४०)

कन्याया मतिगात्रवृद्धिसमयो यावत्समां षोडशीं ।
स्यात्पुंसोपि च पञ्चविंशतितमीं स्वाभाविकात्तत्क्रमात् ॥
शास्त्रे सुश्रुतनामके च चरके वैद्येऽनुभूत्या चिरं।
गार्हस्थ्ये गदितोऽवधिर्बुधवरैर्नान्यः पुनः श्रेयसे ॥

षोडश वर्षों में होती है, कन्या की शारीरिक वृद्धि।
होती है पचीस वर्ष में, नर तन की स्वाभाविक वृद्धि ॥
चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रथों में, कहते हैं यों प्रज्ञावान।
इस वय में दोनों होते है, श्रेष्ठ धर्म-कर्तव्य निधान ॥

वर कन्या का अनमेल।

(१४१)

यत्र स्याद्वरकन्ययोर्विषमता शीले शरीरे पुन-
र्विद्यायां प्रकृतौ च रूपवयसोर्धर्मे कुले सद्गुणे ।
सम्बन्धादनयोर्भवेत्कुयुगलं क्लेशाय सम्बन्धिनां ।
व्यर्थं जीवनमेतयोः किल ततः सम्पद्यते दुःखदम् ॥

जिस वर कन्या का होता, आचार विचार शरीर न सम।
होती विद्या वय स्वभाव कुल, सद्गुण धर्म विचार विषम ॥
वह अनमेल विवाह कहाता, दोनों को देता अति कष्ट।
नर भव निष्फल बन जाता है, हो जाता है जीवन नष्ट ॥

द्वितीय परिच्छेद

गृहिणी का धर्म ।　　(१४२)

मन्तव्या जननीव साम्प्रतमसौ श्वश्रूः प्रपूज्योपमा ।
संसेव्यः श्वशुरस्तु तातसदृशः पूज्यः कुलीनस्त्रिया ॥
मान्यः स्वीयपतिर्हृदि प्रभुसमः सेव्यैकदृष्ट्या सदा ।
येऽन्येपि स्वजनाः सुधामयदृशा दृश्याः प्रमोदेन ते ॥

समझे माता सम सासू को, उत्तम पूज्य सदैव महान ।
सेवा करे श्वसुर को समझे, पूज्य सदा निज पिता समान ॥
निज पति को ईश्वर सम समझे, सेवा भाव रखे निज मन ।
मोद हृदय भर सुधा दृष्टि से, देखे स्वजनों को निशदिन ॥

कुटुंब क्लेश की भयंकरता ।

(१४३)

अत्यल्पोऽपि भयावहः क्षतिकरः क्लेशस्तु कौटुम्बिको ।
लज्जागौरवनाशकः कुलयशःख्यातिद्रुदावानलः ॥
लेशेनापि तदादरो न गृहिभिः कार्यः कुटुम्बे निजे ।
स्यात्तत्कारणमंशतोऽपि जनितं छेद्यं समूलं द्रुतम् ॥

गृह का तनिक क्लेश भी होता, महा हानिकर अति भयदान ।
लज्जा गौरव कुल यश कीर्ति, लता को होता अग्नि समान ॥
हित चिंतक सत् पुरुष स्वगृह में, करते नहीं क्लेश किंचित् ।
क्लेश जनक कारण की जड़ का, छेदन करते रहते नित ॥

क्लेश के कारण और सहनशीलता।

(१४४)

यत्किञ्चिद्यदि यातृभिः कृतमहो न्यूनं स्वकार्यं गृहे।
भुक्तं वाधिकमिष्टभोजनमलं स्वस्मात्तदीयैः सुतैः ॥
मुक्त्वौदार्यसहिष्णुते कुशलया ताभिः समं तत्कृते।
धार्यो नैव कदापि दुःखजनकः क्लेशो गृहिण्या तदा ॥

यदि थोड़ा भी किसी व्यक्ति ने, कभी काम को अल्प किया।
अगर किसी के वालक ने, मिष्टान्न अधिक हो कभी लिया ॥
तो इन क्षुद्र कारणों में रख, सहन शीलता भाव उदार।
गृह में कभी न होने देना, महा कष्टप्रद क्लेश विकार ॥

सुशील स्त्रियों की भावनाएं।

(१४५)

पाताले प्रविशन्तु तानि रुचिराण्याभूषणानि द्रुतं।
गर्ते तानि पतन्तु मञ्जुलमहामूल्यानि वस्त्राण्यपि ॥
सम्पन्नश्यतु सा ययाऽनिशमपि स्वीये कुटुम्बे कलि—
र्मन्यन्ते हृदि याः सदेत्थमुचितं ता एव साध्व्यः स्त्रियः ॥

गहनों से होता कलेश तो; वे पाताल चले जाएं।
सुन्दर वस्त्रों से होता तो, वे भी गड्ढे में जाएं ॥
यदि संपति से होता तो, हो जाए वह शीघ्र विनष्ट।
जिन से गृह में सदा क्लेश हो, वह न मुझे किंचित् है इष्ट ॥

कुलोद्धारिणी स्त्री।

(१४६)

मातस्त्वं महती विशालहृदया दक्षासि शिक्षाप्रदा।
क्षुद्राहं स्खलनं मम प्रतिपदं हंहो भवत्यञ्जसा॥
आगो मे सपदि क्षमस्व न पुनश्चैवं करिष्याम्यहं।
श्वश्रूं या कुपितामिति प्रशमयेत्सा स्यात्कुलीना वधूः॥

माता आप उदार हृदय हैं, हैं उत्तम उपदेश प्रदा।
बार बार शिक्षा देती हैं, मुझ से होती भूल सदा॥
क्षमा कीजिए भूल न होगी, मुझ से मैं कहती हूं सत्य।
कुपित सास के सन्मुख रखती, उत्तम वधू भाव यह नित्य॥

गृहिणी पद की योग्यता।

(१४७)

साहाय्यं कुरुतेऽन्यकार्यकरणे कृत्वापि कार्यं निजं।
श्रुत्वापि प्रखरं ननान्दवचनं ब्रूते प्रशान्तं वचः॥
या यात्रादिजनैः सदैक्यमचलं बध्नाति बुद्ध्योत्तमं॥
सा पात्रं गृहिणीपदस्य भवति प्रद्योतयन्ती यशः॥

अपना कार्य पूर्ण कर पर को, नित सहायता देती है।
वचन अनादर के सुन कर भी, शांत वचन नित कहती है॥
बुद्धि चतुरता से गृहजन को, सदा बना लेती अनुकूल।
वह गृहिणी पद योग्य नारि है, सुख समता यश की है मूल॥

उत्तम स्त्री के आभूपण।

(१४८)

किं स्यादञ्जनशोभया नयनयोः स्वल्पापि लज्जा न चे-
त्किं वस्त्रैर्मणिभूपणैः सुरचितैः पूज्ये न चेत्पूज्यधीः ॥
किं रूपेण मनोहरेण वपुषः शीलं न चेच्छोभनं ।
पातिव्रत्यमनुत्तमं हि गदितं स्त्रीणां परं भूषणम् ॥

अंजन से शोभा न नयन की, यदि लज्जा का तार नहीं ।
वड़े जनों की विनय नहीं तो, शोभा पाता शृंगार नहीं ॥
सुन्दरता से क्या शोभा है, नहीं शील का यदि भूषण ।
सब से श्रेष्ठ सुभग नारी का, पातिव्रत्य है आभूषण ॥

विपत्ति के समय पति को सहायता ।

(१४९)

यद्येभिर्मम भूषणैश्च वसनैः संरक्ष्यते गौरवं ।
स्वामिन् स्वीकुरु भूषणानि कृपया शीघ्रं तदेमानि मे ॥
एवं या विपदि प्रिया निजपतेः कुर्यात् सहायं परं ।
योषा सैव पतिव्रतापदमलं प्राप्नोति शोभास्पदम् ॥

यदि मेरे वस्त्राभरणों से, गौरव रहता है रक्षित ।
तो इनको कर ग्रहण नाथ, दासी को दीजे मोद अमित ॥
आपद आने पर निज पति को, देती यों सहायता दान ।
वह पतिव्रता नारी ही है, जग में अतिशय शोभावान ॥

पत्नी का पति को योग्य सलाह देना।

(१५०)

नैते योग्यतरा इमे च कुशला एभिर्वरा मित्रता ।
मार्गोऽयं न हितावहः सुखकरश्चायं तु पन्था इति ॥
सन्दिग्धे विषये निनीषति पतिं गन्त्रीव या सत्पथं ।
योषा सैव पतिव्रताकुलमणिः संस्तूयते सज्जनैः ।

है यह मार्ग अहित कर, दुख कर, कभी न इस पर चलिए नाथ ।
नहीं मित्रता योग्य पुरुष यह, इसका कभी न कीजे साथ ॥
संशय पथ में इस प्रकार मंत्री सम देती शुभ सम्मति ।
वह पतिव्रता नारी जग में, करते सज्जन जन संस्तुति ॥

पति की आरोग्य-रक्षिका।

(१५१)

अन्नं पथ्यमिदं शरीरसुखदं मत्स्वामिनोऽस्मिन्नृतौ ।
नेदं संगतमस्ति पथ्यमुचितं नातो विधेयं तथा ॥
एवं या पतिदेहरक्षणविधौ यत्नं विधत्तेऽनिशं ।
योग्या सैव पतिव्रताकुलमणिः संस्तूयते सज्जनैः ॥

यह भोजन है सुखद स्वास्थ्यकर, ऐसा मन में चिंतन कर ।
ऋतु अनुकूल पथ्य भोजन, जो, सदा बनाती है हितकर ॥
बल वर्द्धक, पौष्टिक भोजन से, करती है शरीर रक्षण ।
कुल मणि, उस पतिव्रता नारि की, स्तुति करते हैं सज्जन ॥

धर्म सहायक।

(१५२)

धर्मस्यावसरोयमस्त्यसुलभः कार्यान्तरं त्यज्यतां।
स्वास्थ्येनैव विधीयतामभिमतो धर्मस्तव श्रेयसे॥
एवं या समये निवेदयति तं धर्मे प्रसन्ना पतिं।
नित्यं सैव पतिव्रताकुलमणि. संस्तूयते सज्जनैः॥

धर्म क्रिया का यह अवसर है, कीजे इसे कार्य तज अन्य।
हो निश्चित आत्म हित का, यह कार्य कीजिए आप अनन्य॥
योग्य समय पर निज पति को यों, करती धर्म कार्य में लग्न।
वह पतिव्रता नारी कुल मणि, स्तुति करते हैं धार्मिक जन॥

पति के क्रोध समय क्षमा।

(१५३)

श्रुत्वा या कटुभाषणानि बहुधा पत्ये न कुर्यात् क्रुधं।
विज्ञाप्य प्रणिपत्य वा शमयति क्रोधं तदीयं द्रुतम्॥
त्यक्त्वा कर्णकटूगिरो मृदुतरा माधुर्ययुक्ताः पतिं।
ब्रूयात् सैव पतिव्रताकुलमणिः संस्तूयते सज्जनैः॥

क्रोधित हुए स्वपतिदेव के, क्रोध भरे सुन कटुक वचन।
विनय भक्ति से तथा युक्ति से, कर देती जो क्रोध शमन॥
हटा कटुकता नम्र मधुर मृदु, भाव बनाती पति का भव्य।
वह पतिव्रता कुल मणि नारी, सज्जन जन द्वारा संस्तुत्य॥

गरीबी में मितव्ययता ।

(१५४)

नोद्योगः प्रचुरो न चास्ति विपुलो द्रव्यागमः साम्प्रतं।
कार्योतो न गृहे व्ययश्च बहुशो नो भूषणादिस्पृहा ॥
एवं प्रेक्ष्य पतिस्थितिं वितनुते स्वायानुसारं व्ययं ।
योषा सैव पतिव्रताकुलमणिः संस्तूयते सज्जनैः ॥

चलता कुछ उद्योग नहीं, इस समय न लाभ अधिक होता।
भूषण की कुछ चाह नहीं जब, खर्च कठिनता से चलता ॥
कर विचार पति की स्थिति का, लाभ देख करती जो व्यय ।
वह पतिव्रता कुल मणि नारी, सज्जन जन द्वारा संस्तुत्य ॥

कैसी नारियां कुल की शोभा बढ़ाती हैं ।

(१५५)

भो भो स्वागतमद्य पावनमभूद् गेहाङ्गणं वः पदै-
र्जातं वः शुभदर्शनं बहुदिनैः स्वास्थ्यं शरीरेस्ति किम् ?
एवं यादरमुत्सुका कलयते प्राघूर्णिकानां मुदा ।
दारिद्र्येपि हि शोभतेऽधिकतरं गेहं गृहिण्या तया ॥

"अति शुभ है आगमन अहा !, पद रज गेह हुआ पावन ।
दर्शन दिए बहुत दिन में, प्रिय ! स्वस्थ आपका है तन मन' ॥
विनय सभ्यता से करती यों, सदा अतिथि का जो सम्मान ।
दीन हीन होते भी, उस नारी का गृह है शोभावान ॥

कैसी स्त्रियां गृह की प्रतिष्ठा नष्ट करती हैं।

(१५६)

हा कैतेऽतिबुभुक्षिता अतिथयो गेहं प्रविष्टाश्च ते।
किं वास्त्यत्र परं गृहं किमु विदुर्दासीमिमे मां निजाम्॥
एवं यात्र तिरस्करोति नितरां प्राघूर्णिकानुद्धता।
द्रव्ये सत्यपि शोभतेऽल्पमपि नो गेहं तया योषिता॥

ये भूखे मेहमान कहाँ से, आज आगए वनवासी, ।
क्या मेरा ही गेह अधिक है, मैं हूं क्या इनकी दासी॥
जो नारी यों उद्धतपन से, करती अतिथों का अपमान।
उसका ग्रेह न शोभा पाता, होने पर भी अति धनवान॥

प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली सुनारियां।

(१५७)

वाचा मिष्टतरापि नानृतलवैर्मिश्रास्ति यस्याः स्त्रिया।
दृष्टिः स्नेहसुधाभृतापि विकृता नास्त्यन्यपुंसि प्रियात्॥
औदार्यं विपुलं हृदस्तदपि नायोग्यव्ययाध्वाश्रितं।
सा नारी गृहिणीपदस्य तनुते सत्यां प्रतिष्ठां पराम्॥

जिसकी वाणी मिष्ट मधुर है, नहीं असत्य दोष युत है।
प्रेम सुधा से सनी दृष्टि है, भाव विकार न किंचित् है।
है उदारता, सदय हृदय है, नहीं व्यर्थ व्यय करती है।
वह शुभ नारी गृहिणी पद को, सदा प्रतिष्ठित रखती है॥

वधू के साथ सास का व्यवहार कैसा हो।

(१५८)

या पुत्रीमिव मन्यते सुतवधूं प्रेम्णा प्रमोदान्विता ।
नो निष्कारणमेव कुप्यति तथा न द्वेष्टि नाक्रोशति ॥
दत्ते चोत्तमशिक्षणं हितधिया प्रासङ्गिकं शान्तितः ।
सा श्वश्रूपदमर्हति स्वपरयोः सौख्यं विधातुं क्षमा ॥

पुत्र वधू को पुत्रि सम लख, प्रेम, प्रमोद बढ़ाती है ।
नहीं अकारण क्रोधित होती, व्यर्थ न दोष लगाती है ॥
हितकारी उत्तम शिक्षा दे, शांति भावना भरती है ।
वही सासु के योग्य नारि है, सुखी स्वगृह को करती है ॥

स्त्री के साथ कैसा भाव रखना ।

(१५९)

दासीयं गृहदासकर्मण इति श्वश्र्वा न संचिन्त्यतां ।
किन्त्वस्माकमियं वधूः कुलयशःसौख्यदेति स्फुटम् ॥
किंचेयं मम धर्म्मकार्यकरणे साहाय्यसम्पादिनी ।
सन्तत्युत्तमशिक्षिकेति सततं पत्या विनिश्चीयताम् ॥

धर्म कर्म में सदा सहायक, शुभ सम्मति देने वाली ।
है संतति की परम शिक्षिका, प्रेम भाव भरने वाली ॥
कुल यश सौख्य बढ़ाने वाली, नारी को जो लखते हैं ।
हैं वह शुभ पति निज गृहिणी पर, दासी भाव न रखते हैं ॥

तृतीय परिच्छेद

विधवाओं का कर्तव्य।

(१६०)

वैधव्यं स्वकठोरकर्मवशतो यद्याप्तमार्यस्त्रिया।
निर्वाह्यं सुसतीपवित्रचरितान्यालोच्य सत्प्रज्ञया॥
वैराग्यान्वितशीलमेव परमं तस्या मतं भूषणं।
यावज्जीवमखण्डितं हितकरं धार्यं न चान्यत्ततः॥

दुरित कर्म वश से यदि विधवा, होजाये कोई नारी।
सतियों का चरित्र स्मरण कर, बने सदा शुभ मति धारी॥
शुभ वैराग्य भावना रखकर, बना शील को निज भूषण।
शील अखंडित पालन कर निज, रक्खे शुभ पवित्र जीवन॥

विधवाओं को किस तरह आचार रखना।

(१६१)

तप्ताङ्गारसमः स्त्रिया पतिमृतौ शृङ्गारभारोखिल--
स्त्याज्यः कामकथापि कण्टकसमा शीलं शुभं रक्षितुम्॥
दुःसङ्गाद् व्रतभञ्जकाच्च नितरां तिष्ठेच्च दूरे ततो।
हेयं सूक्ष्मतरांशुकं च नियतं भोज्यं विकारोज्झितम्॥

सब शृंगार को तज देना, सदा समझ कर अग्नि समान।
काम कथा कंटक सम तज कर, रक्षित रखना शील महान॥
रहना अलग दुष्ट संगति से, शुभ व्रत की नाशक लख कर।
सादी चाल सदा रखना, करना सात्विक भोजन हितकर॥

विधवाओं को किस तरह समय बिताना।

(१६२)

सद्भावे किल सन्ततेः समुचितं तद्रक्षणं सर्वथा।
नो चेत् स्थित्युचितं विधाय निलये कृत्यं निजं सादरम्॥
त्यक्त्वान्यां विकथां निवृत्तिसमये विद्यार्जनं वाचनं।
शास्त्रस्य श्रवणं विचिन्तनमथो धर्मस्य कार्यं पुनः॥

सद्भावों से निजसंतति का, करना नित समुचित रक्षण।
पुत्र न हो तो स्थिरमन से, करना स्वगृह कार्य प्रतिक्षण॥
शेष समय में विकथाएं तज, विद्या पढ़ना देकर ध्यान।
शास्त्र श्रवण करना अथवा, नित करना धर्म विचार महान॥

प्रौढ़ विधवाओं का कर्तव्य।

(१६३)

सम्पन्ने निजशिक्षणे स्वचरिते लोकप्रतीतिं गते।
लब्ध्वाज्ञां कुलनायकस्य विधवा कुर्यात्परार्थे मनः॥
स्त्रीवर्गस्य भवेद्यथोन्नतिरथ भ्रान्त्यज्ञते नश्यतः।
स्वश्रेयोपि भवेत्तथाऽनवरतं यत्नं विदध्यात् सती॥

उत्तम शिक्षा पूर्ण प्राप्त कर, अपना बना चरित सुन्दर।
जग की श्रद्धा भाजन बनकर, गृहपति की आज्ञा लेकर॥
करना जग उपकार, नारियों को नित शुभ शिक्षा देना।
उन्नत पथ पर लाने के हित, सदा महान यत्न करना॥

कुटुंबियों का व्यवहार ।

(१६४)

वर्षत्स्नेहसुधाभृता शुभदृशा कौटुम्बिकैः सज्जनैः ।
सम्प्रेक्ष्या विधवा विशुद्धचरिता मान्याश्च साध्वीसमाः ॥
आसां स्यात्कुपितं मनो नहि पुनर्विघ्नोपि विद्यार्जने ।
सत्कार्यप्रतिबन्धनं च न भवेद्वृत्त्यं तथा ताः प्रति ॥

गृह पुरुषों को विधवाओं पर, स्नेह सुधा की करना वृष्टि ।
शुद्ध चरित विधवा को साध्वी, सम लख रखना आदरदृष्टि ॥
पड़े न बाधा सत्कार्यों में, रखना ऐसा शुभ व्यवहार ।
विद्या पढ़ने में न विघ्न हो, आवे कभी न क्रोध विकार ॥

चतुर्थ परिच्छेद (पुरुषों के धर्म)

कृतज्ञता और परोपकार ।

(१६५)

एते सन्त्युपकारिणो मम कदा कुर्याममीषां हितं ।
बोध्योऽयं हि कृतज्ञताभिधगुणो यैवंविधा भावना ॥
तेषां यद्बहुमानपूर्वमनिशं साहाय्यदानं मुदा ।
ख्यातः प्रत्युपकारनामकगुणः सोयं सतां सम्मतः ॥

अपने उपकारी जन का मैं, कब चुकाऊंगा शुभ उपकार ।
'इस प्रकार चिंतन करना है, शुभ कृतज्ञता भाव उदार' ॥
अधिक मान दे उपकारी को, देना नित सहायता दान ।
कहलाता है जग में यह शुभ, प्रत्युपकारी भाव महान ॥

कृतज्ञता और प्रत्युपकार की आवश्यकता।

(१६६)

एतौ द्वौ सुगुणौ मनुष्यनिवहेऽवश्यं सदाऽपेक्षितौ।
दृश्यन्ते शुनकादिके पशुगणेप्येतौ यतः स्पष्टतः ॥
न स्तो यत्र गुणाविमौ स मनुजाकारोपि नीचः पशो—
र्गार्हस्थ्यं सुगुणान्विहाय सफलीकर्तुं समर्थः कथम् ॥

शुओं में भी होते हैं यह, दोनों शुभ गुण महत् उदार।
: मनुजों के लिए निरंतर, यह दोनों गुण अति सुखकार॥
जनमें यह गुण नहीं भरे हैं, उनका पशु सम जीवन व्यर्थ।
ोनों गुण से रहित मनुज, गृह कार्य चलाने में न समर्थ॥

माता पिता का उपकार।

(१६७)

मान्या यद्यपि तेऽखिला गुरुजनाः प्रौढा विशिष्टाश्च ये।
नैकव्यात्पितरौ च तेष्वपि सदा पुत्रस्य पूज्यौ मतौ॥
ताभ्यां योपकृतिः कृतातिमहती तस्याः पुनर्निष्कृतिं।
कर्तुं लक्षतमांशतोपि न सुतः शक्नोति सेवादिना॥

सबही गुरुजन प्रौढ़ शिष्ट जन, हैं सन्मान योग्य सुखकर।
पर हैं सब से अधिक पुत्र को, माता पिता पूज्य हितकर॥
कठिन परिश्रम द्वारा सुत का, जितना किया महा उपकार।
सेवा से सुत अंश मात्र भी, कर सकता क्या प्रत्युपकार॥

क्या करने पर भी प्रत्युपकार नहीं हो सकता।

(१६८)

नाज्ञां क्वापि भनक्ति यो जनकयोः सेवापटुः सर्वदा—
भीष्टं भोजयति स्वयं सुमनसा तौ स्तः प्रसन्नौ यथा ॥
स्कन्धे वाहयते यथारुचि च तौ निःसीमभक्त्या मुदा।
कर्तुं निष्करणं तयोस्तदपि नो पुत्रः कथञ्चित्क्षमः ॥

आज्ञाएं मस्तक पर रखना, सेवा मग्न सदा रहना।
भोजन करना स्वयं खिलाकर, सदा प्रसन्न हृदय रखना ॥
कंधे रख इच्छानुसार ही, भ्रमण कराना भक्ति समेत।
इतने पर भी नहीं पितृ ऋण, चुक सकता है प्रेम निकेत ॥

किस प्रकार बदला चुकाया जा सकता है।

(१६९)

किं नास्त्येव तथाविधं किमपि यद्दत्त्वा प्रमोदास्पदं।
स्वर्गीयं सुखमात्मनश्च सहजं संसाधयेन्निष्कृतिम् ॥
अस्त्येतादृशमेकमेव विदितं वस्त्वत्र धर्मात्मकं।
तस्मान्निष्कृतये सुतः पितृमनः कुर्यात्सुधर्माश्रितम् ॥

'है क्या? कोई वस्तु न ऐसी, जिससे मिले प्रमोद महान।
आत्मशांति के साथ साथ हो, सहजानंद सौख्य अमलान ॥
हाँ, है ऐसी वस्तु जगत् में, वह है धर्म महा सुखखान।
है सुत का कर्तव्य, पिता को, धर्म भावना करे प्रदान ॥

माता पिता की चिंताएं दूर करना।

(१७०)

निश्चिन्तं निरुपाधिकं यदि भवेच्चित्तं प्रसन्नं सदा।
धर्मे शान्तिसमन्विते दृढतरं स्थैर्यं तदा लभ्यते॥
तस्मात्सद्व्यवहारमार्गनिपुणैः कार्यः प्रयत्नस्तथा।
स्यात्पित्रोर्हृदयं यथा समुचितं धर्मं क्षमं सेवितुम्॥

गृह की सब उपाधिएं हटकर, चिंता रहित चित्त होता।
शांति प्रदायक धर्म कार्य में, होती तब दृढ़ स्थिरता॥
बनकर निपुण सभी कार्यों को, करना प्रतिदिन यत्न सहित।
कर गृह से निश्चित पिता को, धर्म कार्य में करना रत॥

पुत्र के प्रयत्न से धर्म का रंग न चढ़ा तो ?

(१७१)

पुत्रो धर्मपरायणो विनयवान् भक्त्या स्वधर्मेण वा।
कर्तुं वाञ्छति सर्वथा जनकयोः सौख्यं द्विधाप्युत्तमम्॥
तृष्णादोषवशौ तथापि यदि तौ नो शक्नुतः सेवितुं।
धर्मं शान्तिलवं च किञ्चिदपि चेद्दोषः सुतस्यात्र कः॥

धर्म परायण विनय वान हो, उत्तम पितृ भक्त जो सुत।
मात पिता को उभय लोक के, सुख में रखता तत्पर नित॥
यदि वह लोभ पाश में पड़कर, करें न अपना हित चिंतन।
करें प्रयत्न न शांति लाभ का, तो सुत को न दोष किंचन॥

कृतघ्नता।

(१७२)

दुःशीलाङ्गनया यथाकथमपि व्युद्ग्राहितो यो गृही।
विस्मृत्यैव तदर्हणं नु कुरुते दुःखाकुलं तन्मनः॥
प्रायो धर्मपराङ्मुखोयमधमो नूनं कृतघ्नो नरो।
न स्थातुं क्षणमप्यलं शुभतरे कर्तव्यकार्ये पुनः॥

उपकारों को भूल, न करते, निज कर्तव्य कभी पालन।
धर्म विमुख रह मात पिता का, रखते दुख से व्याकुल मन॥
तिरस्कार करते रहते हैं, देते सुख साता न कहीं।
नीच कृतघ्न पुत्र वे कुछ, कर सकते निज कर्तव्य नहीं॥

पालक और उद्धारक के साथ प्रत्युपकार।

(१७३)

येषां स्नेहजुषा दृशा व्यवहृतौ प्राप्तः समृद्धिं परा -
मिच्छेत्प्रत्युपकारमात्महृदये तेषां कृतज्ञो मुदा॥
सोयं यद्यपि दुष्करो निगदितः प्रायस्तथाप्युत्तमं।
दत्त्वा धर्मसदत्तवस्तु समये सेयं कृतिः साध्यताम्॥

जिनकी दया सनेह दृष्टि से, बना प्रसिद्ध समृद्धि निधान।
नहीं भुलाता उनके उपकारों, को जो नर है गुणवान॥
किन्तु कठिन श्रम के द्वारा नित, रहता प्रत्युपकार निरत।
सर्व श्रेष्ठ निज वस्तुदान कर, करता है उनका हित नित।

पंचम परिच्छेद (पुरुषों के धर्म)

उदारता और सहिष्णुता ।

(१७४)

दातैकः कृपणो परश्च चपलो धीरो परो मन्दधी -
रेवं चैकगृहेपि भिन्नरुचयः कौटुम्बिकाः स्युर्जनाः ।
तेन्योन्यस्य न चेत्स्वभावजनितं भेदं सहन्ते मनाग् ।
जागर्त्यत्र गृहे तदा प्रतिदिनं क्लेशो विपत्त्यावहः ॥

दानी, कृपण, धीर, चंचल मति, बुद्धिमान, जड़ बुद्धि महा ।
रहते सदा एक ही गृह में, भिन्न प्रकृति के पुरुष अहा ॥
किसी मनुज में सहन शक्ति या, हो उदारता भाव नहीं ।
बना रहेगा क्लेश सदा तो, शांति न होगी प्राप्त कहीं ॥

असहनशीलता का परिणाम ।

(१७५)

भ्रातृणां कलहेन यत्र सुखदं चैक्यं विनश्येत्तदा ॥
नष्टं तस्य गृहस्य गौरवयशःख्यातिप्रतिष्ठादिकम् ॥
तस्मादैक्यबलोच्छ्रयाय गृहिणा सर्वप्रसङ्गे पुनः ।
सोढव्यं परमादरेण सकलं कृच्छ्रं हिताकांक्षिणा ॥

जहाँ कलह है, ऐक्य नहीं है, वहाँ न सुख का रहता वास ।
गौरव, यश, सम्मान, प्रतिष्ठा, हो जाती उस घर की नाश ॥
जो जन निज कल्याण चाहते, उनके हित यह है उपचार ।
कठिन साधनों में भी रखना, सुमति, एकता भाव उदार ॥

उदारता के अभाव में ईर्ष्या की शक्ति।

(१७६)

यः स्वस्माद्धिको भवेच्च सुगुणैर्ज्येष्ठः कनिष्ठोऽथवा।
प्रख्यातं भुवि तद्यशोधिकतरं तस्मिन्प्रसङ्गे यदि॥
नौदार्यं भवति प्रमोदजनकं भ्रात्रोस्तदेर्ष्योद्भव-
स्तस्माद्दोषपरम्परा हि गृहिणां पुण्याङ्कुरोन्मूलिनी॥

छोटे बड़े किसी भाई में, हो यदि कोई सुगुण महान।
होता हो प्रख्यात जगत में, पाता हो यदि वह सम्मान॥
हो उदारता यदि न किसी में, जागृत हो ईर्ष्या का भाव।
कलह, द्वेष, बढ़ता दोनों में, क्षय होता है पुण्य प्रभाव॥

उदारता और सहनशीलता की सीमा।

(१७७)

दृष्ट्वात्मीयजनोन्नतिं भवति यच्चित्तं प्रफुल्लं भृश-
मौदार्यं किल मध्यमं निगदितं प्राज्ञैर्गृहस्थाश्रमे॥
साहाय्यं तदधोगतौ सुमनसा यद्दीयते चार्थिकं।
यावच्छक्ति गुणोत्तरेण गृहिणौदार्यं प्रधानं हि तत्।

दुष्ट भाव से यदि कोई नर, पहुँचाता हो हानि सतत।
उसका दुष्ट भाव हरने को, करना यत्न विचार सहित॥
महा यत्न से, हो न बदलती, दुष्ट प्रकृति देती हो कष्ट।
तो उसके संबंध भंग में, होती नहीं उदारता नष्ट॥

उदारता के भेद ।

(१७८)

यद्यन्यस्य विलक्षणः क्षतिकरो दुष्टस्वभावः पर—
स्तद्दुष्टत्वविनाशनाय गृहिणा यत्नो विधेयो भृशम् ॥
यत्ने चेत्प्रकृतिर्न शुद्ध्यति मनाक् कौटुम्बिकस्योद्धता ।
तत्सम्बन्धविघट्टनेपि गृहिणो नौदार्यहानिस्तदा ॥

अपने बंधुजनों का उन्नत, देख हर्ष जो करता है।
ईर्षा रखता नहीं हृदय में, वह मध्यम उदारता है ॥
निराधार असहाय जनों को, तन मन धन दे सदा उचित।
उनकी नित सहायता करता, वह उदारता है उन्नत ॥

सहिष्णुता के भेद ।

(१७९)

तद्येषास्ति सहिष्णुता सुगृहिणां सामर्थ्ययुक्ता वरा ।
साप्यौदार्यगुणे सुपर्यवसिता प्राधान्यमापद्यते ॥
नो सामर्थ्ययुता तदा व्यवहृता सा नम्रताख्ये गुणे ।
द्वावेतावरिवर्गतोपि विशदप्रीत्यर्जने शक्नुतः ॥

रखते हुए समर्थ अलौकिक, सहलेना पर कृत अपमान ।
दंड न देना, वह जग में है, सहन शीलता अहो महान ॥
होने पर असमर्थ नम्रता, दिखलाना सहलेना क्रोध ।
मध्यम सहन शीलता है वह, रखते इसको मनुज अबोध ॥

दोनों गुणों की अनुपस्थिति का फल।

(१८०)

स्यादौदार्यगुणो न चेदधिपतौ गेहस्य वा संसदो।
नो शक्नोति चिरं स नायकपदे स्थातुं व्यवस्थाक्षतेः॥
न स्याच्चेद्धि सहिष्णुताश्रितजने दक्षेपि भृत्ये पुनः।
स प्राप्नोति न वत्सलत्वमुचितं भ्रश्येद् भृशं स्वार्थतः॥

गृह स्वामी हो या राजा हो, पर हो नहीं उदार विचार।
तो अपने आधीन जनों पर, कभी न रख सकता अधिकार॥
सहनशील हों नहीं पराश्रित, पराधीन यदि सेवक जन।
कभी न प्रेम पात्र वन सकते, कर सकते न कार्य ग्रहण॥

दोनों गुणों की आवश्यकता।

(१८१)

एतौ गेहगतैक्यरक्षणकृते नापेक्षितौ केवलं।
किन्तूद्योगविवर्द्धने व्यवहृतौ स्वार्थे परार्थे तथा॥
शिक्षाया ग्रहणे तथा वितरणे नेतृत्वनिर्वाहणे।
देशज्ञातिसमाजकार्यकरणे कामं सदापेक्षितौ॥

केवल गृह के ऐक्य हेतु ही, दोनों गुण हैं नहीं महत्।
किन्तु स्वार्थ परमार्थ कला, व्यवहार ज्ञान की उन्नतिहित॥
शिक्षा देने लेने में, नेतापन के भी लिए सतत।
देश समाज जाति कार्यों हित, दोनों गुण आवश्यक नित॥

षष्ठ परिच्छेद (पुरुषों के धर्म)

मित्रों की आवश्यकता।

(१८२)

प्रत्येकं परिवर्तते तनुभृतां दुःखं सुखं चान्वहं।
दुःखे सन्निहिते सुखे च विगते चित्तं भृशं क्लिश्यते॥
न स्युश्चेत्सुहृदो विशालमनसस्तस्मिन्प्रसङ्गे तदा।
दद्यादाश्वसनं सहायमथवा तस्मै निराशाय कः॥

इस परिवर्तन शील जगत् में, दुख सुख का चक्कर चलता।
दुख के आने पर जब मन अति, क्लेश अग्नि से है जलता॥
हो न विशाल हृदय वाला यदि, कहीं उस समय मित्र अहो।
दुखित निराश हृदय को देगा, तो आश्वासन कौन कहो॥

मित्र कैसे होना चाहिए।

(१८३)

यो मैत्रीं विषमे विपत्तिसमये प्रेम्णा सदा निर्वहे-
द्धर्तुं दुःखमपेक्ष्यते यदि शिरो दातुं स सज्जो भवेत्॥
नेतुं यः सुहृदं यतेत सुपथे रुद्ध्वा दुराचारतः।
सन्मैत्रीपदमर्हति क्षितितले दक्षः स एवोत्तमम्॥

विषम विपत्ति समय में करते, सुहृद मित्रता का निर्वाह।
सिर भी देना पड़े दुख में, तो दे देते हैं हित चाह॥
सदा लगाते हैं सत् पथ में, दुराचार से रखते दूर।
इस पृथ्वी पर वही श्रेष्ठ नर, हैं मैत्री गुण से भरपूर॥

कैसे पुरुष मित्रता के अयोग्य हैं।

(१८४)

ये क्रूरा व्यभिचारिणो व्यसनिनो विश्वासघाते रता।
मिथ्याभाषणशालिनश्च मलिना मायाविनो मानिनः॥
लुब्धाः स्वार्थपरायणाः परहितं निघ्नन्ति ये निर्दया।
मैत्र्यां ते मनुजाः परीक्ष्य गृहिणा वर्ज्याः सदा श्रेयसे॥

क्रूर हृदय व्यभिचारी, व्यसनी, जो विश्वासघात करते।
मिथ्याभाषी अभिमानी अति, मलिन कपट मन में रखते॥
लोभी स्वार्थ परायण हैं जो, देख नहीं सकते परहित।
ऐसे नर से करो न मैत्री, यदि अपना हित है इच्छित॥

नादानों की मित्रता का दुष्परिणाम।

(१८५)

प्रख्यातं हि कुलं विनश्यति यथा दुष्टैः सुतैरुद्धतै-
र्मात्राऽशिक्षितया सुतश्च वनिता वेश्यादिसंसर्गतः॥
पाखण्डेन मतिवरोपि नृपतिः क्रूरैश्च मंत्रीश्वरै—
र्दुर्मित्रैरधर्मैर्विनश्यति तथा ह्रा मानुषं जीवनम्॥

दुर्व्यसनी सुत से होती ज्यों, कुल की निर्मल कीर्ति विनष्ट।
नारी वेश्या की संगति से, पुत्र मूर्ख माता से नष्ट॥
दुर्जन मंत्री से राजा, पाखंडों से सुबुद्धि का नाश।
खोटे मित्रों से त्यों होता, मानव जीवन, धर्म विनाश॥

मैत्री स्थिरता के कारण ।

(१८६)

ये मित्रे इतरेतरं कथयतः स्वीयं रहस्यं स्फुटं ।
श्रुत्वा चित्तपटान्तरे च सुतरां गोपायतस्तत्पुनः ॥
ये योग्यामुपदां मिथो वितरतो गृह्णीत एवार्पितां ।
प्रख्यातं कुरुतश्च वास्तवगुणैर्मैत्री तयोः सुस्थिरा ॥

मित्र परस्पर गुप्तबात को, छिपा कभी नहीं रखते हैं ।
सुनकर उसको अपने मन में, गुप्त रूप में धरते हैं ॥
प्रिय सुन्दर भेंट परस्पर, देते हैं और लेते हैं ।
वास्तव गुण विख्यात करें, वे सुस्थिर मैत्री करते हैं ॥

सच्ची मित्रता का नमूना ।

(१८७)

मैत्रीलक्षणमुत्तमं शुभतरं चेद्वाञ्छसि प्रेक्षितुं ।
पश्य प्रेम तदात्र दुग्धजलयोरैक्यं समापन्नयोः ॥
दृष्ट्वैकस्य विनाशनं किमपरं स्वास्थ्यं समालम्बते ? ।
यद्वा स्वल्पतरापि किं विषमता मध्येऽनयोर्विद्यते ॥

जल ने दुग्ध संग मैत्री की, दोनों हुए एक ही रूप ।
जलता देख अग्नि में जल को, लगा उबलने दुग्ध अनूप ॥
पानी का छींटा पाने पर, हुआ दुग्ध भी शांत अहा ।
नहीं विषमता रहती किंचित्, हैं दोनों शुभ मित्र महा ॥

एक पक्ष से स्थिर हुई मित्रता ।

(१८८)

पद्मं सूर्यनिरीक्षणे विकसितं सूर्यो न पद्मेक्षणे ।
चन्द्रं वीक्ष्य चकोरकः प्रमुदितश्चन्द्रो न संप्रेक्ष्य तम् ॥
हृष्टो दीपनिरीक्षणेन शलभो दीपस्तु तद्दाहकः ।
किं वैषम्यमिदं महत्तरमहो न प्रीतिविच्छेदकम् ॥

कमल सूर्य लख प्रमुदित होता, रवि को कुछ न कमल से काम ।
होता मुदित चकोर, चन्द्र लख, पर शशि के न मोद का नाम ॥
दीपक पर पतंग जलता है, दीपक उसे जलाता है ।
है कितना वैषम्य अहो ! पर प्रेमी, प्रेम निभाता है ॥

प्रीति करके निभाना ।

(१८९)

कर्तव्या खलु नैव धर्मविमुखैर्मैत्री विचारं विना ।
जाता चेन्सहसा कथंचिदपि वा प्राणान्तकष्टेपि सा ॥
संरक्ष्या निजमित्रनिष्ठुरहृदि स्नेहेप्यलब्धे मना-
गेतत्प्रीतिसमाश्रयेण कमलाद्येषु स्थिरा दृश्यते ॥

बिना विचारे नहीं कभी भी, विषम भाव में करना प्रीति ।
यदि करलो तो उसे निभाना, देकर प्राण यही है रीति ॥
कितना निष्ठुर कठिन हृदय हो, किन्तु प्रेम मत देना त्याग ।
दीपक पर पतंग सम रखना, स्थिर सदा प्रेम अनुराग ॥

सप्तम परिच्छेद

पुरुष के धर्म-सात्विक प्रेम

विषम मित्रता वाले से।

(१९०)

भ्रातश्चातक सार्थकं तव जनुर्यन्निष्ठुरेप्यम्बुदे।
प्रीतिं निर्वहसे प्रसन्नमनसा नित्यं सश्रद्धां पराम्॥
मैत्रीलक्षणमेतदेव परमं शास्त्रे बुधैर्दर्शितं।
धिक् तान् नैव च निर्वहन्ति सुहृदा मैत्रीं महान्तोपि ये॥

मेघ तुझे पानी देने में, निष्ठुरता दिखलाता है।
रे चातक! पर तू सदैव ही, अटल प्रेम भर लाता है॥
श्रेष्ठ मित्रता का लक्षण, इसको कहते हैं ज्ञानी जन।
लघु लख प्रीति छोड़ देते जो, धिक् हैं वे अभिमानी जन॥

शुद्ध प्रेम। (१९१)

यत्तत्त्वेन निराश्रितं निजसुतं माता मुदा रक्षति।
यत्तत्त्वेन भृशं पिता प्रयतते कर्तुं सुतस्योन्नतिम्॥
यत्तत्त्वं पशुपक्षिकीटनिकरे व्याप्तं समालक्ष्यते।
तत्प्रेमाभिधतत्त्वमस्ति गृहिणामावश्यकः सर्वदा॥

जिन भावों से निर्बल सुत का, रक्षण करती है माता।
सुत को उन्नत शील बनाता, जिन भावों से सदा पिता॥
पशु पक्षी कीटों में भी जो, तत्त्व समाया अहो महत्।
वह स्वाभाविक प्रेम तत्त्व, आवश्यक है गृहस्थ को नित॥

प्रेम को किस प्रकार निर्दोष बनाना।

(१९२)

यत्स्वार्थेन यदाह मिश्रममलं प्रेमाथवा स्वेन्द्रिया-
र्थेनं स्त्रीमदिरास्रगुज्ज्वलमहाभूषागजाश्वादिना ॥
स्यात्तर्हि क्षणिकं परार्थविकलं दोषैस्तु तद्दूषितं।
न स्यादुच्चपदार्पणेन सुखदं नातो बुधैः सेव्यते ॥

जो न स्वार्थ से दूषित हो, जिसमें न वासना का हो भाव।
नहीं लोभ कीचड़ हो जिस में नहीं काम का हो दुर्भाव ॥
हो न क्षणिक जो हो परार्थ हित, नहीं दोष से हो दूषित।
सदा उच्च पद देने वाला, वह ही प्रेम सुखद है नित ॥

प्रेम के उपयोग का क्रम।

(१९३)

ये स्वीया गुरवो भवन्ति सुतरां पूज्या मतास्ते जना-
स्ते प्रेमास्पदिनो भवन्ति लघवः स्वस्माच्च ये स्वाश्रिताः ॥
मुख्यात्रापि पतिव्रतैव गृहिणी मित्रं सुता बान्धवा।
भृत्याश्च क्रमशोधिकारिण इमे प्रेम्णः फले निर्मले ॥

गुरुजन, बड़े जनों पर मन में, नित ही पूज्य भाव भरना।
किन्तु समान भाव वालों पर, लघु जनपर सनेह रखना ॥
पहिले प्रेम पात्र पत्नी है, पुनः पुत्र बांधव, सन्मित्र।
फिर सेवक हैं पात्र प्रेम के, सुक्रम प्रेम का यही पवित्र ॥

प्रेम के अधिकारियों को क्या करना चाहिए।

(१९४)

तत्रायोग्यमनिष्टचिन्तनमलं यत्प्रेमपात्रं भवेत्-
तद्द्रोहोपि नचोचितः कथमपि स्वार्थस्य संसिद्धये ॥
तद्दोषापनये तदुन्नतिकृते यत्नो विधेयस्तथा।
स्याद्येनैहिकपारलौकिकहितं प्रेम्णो ह्यदो लक्षणम् ॥

कभी न अपने प्रेम पात्र का, कुछ अनिष्ट चिंतन करना।
द्रोह न करना, स्वार्थ सिद्धि हित, नहीं अहित पथ में धरना ॥
दोष दूर कर उन्नति पथ में, उसे लगाना यत्न सहित।
यही प्रेम लक्षण प्रेमी का, दोनों भव में करना हित ॥

पत्नी द्रोह या दूषित प्रेम।

(१९५)

स्यादेवंविधभावना यदि तदैकस्यां च सत्यां स्त्रिया-
मन्यां किं परिणेतुमर्हति पतिः योग्यं निमित्तं विना ॥
किं साधु व्यभिचारचिन्तनमपि स्वप्नेपि पापावहं।
तन्मृत्योरपि भावना किमुचिता व्याध्युद्भवेप्युत्कटे ॥

प्रेमी का हित करने की जब, होती मन में चाह अहो।
प्रिय पत्नी तज, अन्य व्याह की, हो कैसे तब चाह कहो ॥
पत्नी त्याग करेगा क्यों, व्यभिचार भाव की दुष्ट प्रवृत्ति।
मृत्यु भाव रख रोगी त्रिय की, क्यों चाहेगा वह निवृत्ति ॥

प्रेम का दुरुपयोग।

(१९६)

मोहावेशवशीकृताः प्रतिदिनं ये स्त्रीमसक्ता नरा।
मर्यादामपि लङ्घयन्ति महतां रक्षन्ति नो स्वस्थताम् ॥
कार्याकार्यविचारमात्रमपि नो कुर्वन्ति धर्मेच्छया।
ते प्रेम्णः किल नोपयोगमुचितं कर्तुं विदन्ति स्फुटम्।

तीव्र मोहवश, निजनारी में, जो आसक्त बना रहता।
रहता है कामांध, स्वास्थ्य का, नहीं ध्यान किंचित् रखता॥
कार्य अकार्य विचार न करता, धर्म भावना करता नष्ट।
वह न प्रेम उपयोग जानता, करता निज पर प्राण विनष्ट॥

अंध प्रेम।

(१९७)

ये प्रेम्णा परिभूषयन्ति वसनैः पत्नीं तथा भूषणैः॥
पुत्रादीनपि रञ्जयन्त्यभिनवैः सम्मोहकैर्वस्तुभिः॥
तेषां जीवनमान्तरैर्गुणगणैः संस्कुर्वते नो पुन।
स्तेप्यन्धा न विदन्ति शोभनतरं प्रेमोपयोगं परम्॥

निज पत्नी पुत्रों को सुन्दर, वस्त्र भूषणों से सज कर।
नये प्रलोभन भाव बढ़ाकर, भोग भाव जो देता भर॥
सद्गुण देकर अंतर जीवन, जो न कभी विकसित करता।
वह न प्रेम का तत्त्व जानता, प्रेम अंध जीवन हरता॥

(१९८)

येनौद्धत्यमदोदयो हृदि भवेत्पुत्रस्य वाण्यां तथा ।
मिथ्याभाषणपद्धतेः परिसरः काये दुराचारिता ॥
यद्वा स्याद्व्यसनोदयो नरभवाऽनर्थक्यकारी भृशं ।
किं प्रेम्णा पुनरीदृशेन गृहिणः किं लालनेनापि वा ॥

जिससे मद, घमंड, उद्धतता, बढ़जाती सुत के मन में ।
मिथ्या भाषी बन, लगजाता, दुराचार के सेवन में ॥
दुर्व्यसनों में पड़ जीवन को, कर देता जिससे वह नष्ट ।
प्रेम अंध ऐसे लालन, पालन से होता सदा अनिष्ट ॥

प्रेम की सफलता ।

(१९९)

स्यात्सम्बन्धिजनस्य शिक्षणरुचिः स्वास्थ्येन युक्ता सदा ।
निर्दोषाचरणञ्च नीतिसहितं प्रीतिः परार्था भवेत् ॥
धर्मे प्रेम मनोबलञ्च विपुलं सद्यो यथा स्यात्तथा ।
नित्यं यो यतते स वेत्ति सुखदं प्रेम्णो रहस्यं परम् ॥

निज पुत्रों को शुभ शिक्षण हित, स्वास्थ्यलाभ के हित जो नित ।
शुद्ध आचरण के निमित्त, रखते हैं अंकुश नीति सहित ॥
बढ़ा मनोबल धर्म प्रेम में, रखते तत्पर प्रेम सहित ।
वह ही प्रेम रहस्य जानते, है ऐसा ही प्रेम उचित ॥

पुत्र पुत्री का समानाधिकार।

(२००)

भोक्तुं प्रेमफलं यथा जनकयोः पुत्रोऽधिकारी भवे—
देवं स्यादधिकारिणी नयदृशा कन्यापि पित्राश्रिता ॥
किं न्याय्योक्तिरियं भवेद्यदनयोः पुंसो द्वयोश्चक्षुषो ।
रेकं हीनमतः परं तदधिकं रक्ष्यं तदन्यत्र वा ॥

मात पिता के प्रेम भाव पर, है जितना सुत को अधिकार।
कन्या भी अधिकारी उसकी, उतनी ही है उसी प्रकार॥
दोनों नेत्रों का समान विधि से, रक्षण करके न अहो।
केवल एक नेत्र का रक्षण, कौन करेगा सुधी कहो?।

पुत्री का हक नष्ट करने में प्रेम की कलंकितता।

(२०१)

यावत्प्रेमवशः पिता प्रयतते कर्तुं सुतस्योन्नतिं।
कन्याया हितसाधने समुचितस्तावान्प्रयत्नः पितुः ॥
किन्त्वेकस्य हिताय पातयति यः कन्यां च दुःखार्णवे।
स स्वार्थी कुटिलो नरोऽधमतरः सद्बुद्धिहीनः खरः ॥

जितने प्रेम सहित निज सुत की, रक्षा का करता है यत्न।
कन्या के हित साधन में भी, करना उतना सदा प्रयत्न॥
जो सुत हित रक्षण कर, कन्या को देते दुखदधि में डाल।
वे स्वार्थी हैं कुटिल अधम नर, बुद्धि हीन पशु सम दुखमाल॥

अष्टम परिच्छेद (कन्या विक्रय)

कन्याविक्रय का परिहार।

(२०२)

विक्रीणाति च योऽधमो निजसुतां द्रव्येण रत्नोपमा ।
मेतस्या हितमाचरेच्च स कथं दुष्टाशयो निष्ठुरः ॥
दत्त्वा तां प्रचुरं धनं यदि जराजीर्णाल्लभेत स्वयं ।
द्रव्यार्थी किमु वालिकां हतविधिर्दद्यान्न तस्मा अपि ॥

धन के लिए नीच नर जो, निज कन्या रत्न वेचते हैं।
निष्ठुर हृदय पातकी वह, क्या कन्याहित कर सकते हैं॥
प्रचुर वित्त की तृष्णा से हा !, वृद्ध पुरुष को देते हैं।
धनलोभी हतभाग्य पिता वह, महानारकी होते हैं॥

कन्या विक्रय के धन की अधमता।

(२०३)

वाणिज्येऽनृतभाषणार्जितमिह द्रव्यं सुतुच्छं मतं ।
तस्मात्तुच्छतरं प्रभूतकलुषं विश्वासघातार्जितम् ॥
तस्मादप्यधमं कलङ्कजनकं पुण्याङ्कुरोन्मूलनं ।
कन्याविक्रयसञ्चितं क्षतिकरं वित्तं सदा दुःखदम् ॥

लिया वणिज से अनीति का धन, निंदनीय कहलाता है ।
कर विश्वासघात संचित धन, उससे अधम कहाता है॥
दिये दान का धन ले लेना, जग में है अति अधम कहा।
कन्या विक्रय से संचित धन, है उससे भी अधम महा॥

कन्या विक्रय का धन भोगनेवाले की दुर्दशा.

(२०४)

कीर्तिस्तस्य कलङ्किता चिरतरं कृत्यैः शुभैः सञ्चिता ।
धर्मो ध्वंसमुपागतः शुभमतिर्नष्टा सुकृत्यैः सह ॥
सौजन्यं तु समाहितं मृतिमिता लोके महत्ता द्रुतं ।
वित्तं योऽर्जितुमिच्छति स्वतनयां विक्रीय दुष्टाशयः ॥

धर्म नष्ट सद्बुद्धि भ्रष्ट हो, शुभ कृत्यों का होता नाश ।
मान बड़प्पन सज्जनता का, हो जाता है शीघ्र विनाश ॥
कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती, अपयश से होता है व्याप्त ।
जो कन्या विक्रय के धन को, अधम मनुज कर लेता प्राप्त ॥

कन्या धन से ली हुई वस्तुएँ ।

(२०५)

किं तैर्दूषणभूतभूषणभरैः कन्याधनेनार्जितं ।
किं मांसोपममोदकैश्च विविधैर्वस्त्रैश्च शस्त्रोपमैः ॥
क्षेत्रैः पुष्पफलोत्कटैः किमु महाहर्म्यैः श्मशानोपमैः ।
किं पल्यङ्कसुखासनादिनिवहैः शूलोपमैर्निन्दितैः ॥

कन्या विक्रित धन के भूषण, हैं दूषण सम कष्ट निदान ।
सुन्दर वस्त्र शस्त्र सम हैं, मिष्टान्न अहो है मांस समान ॥
बाग बगीचे महल, अटारी, हैं सब श्मशान के सम ।
सुन्दर सुखद पुष्प शय्याएँ, नहीं शूल शय्या से कम ॥

कन्या विक्रय करने वाला कुटुम्ब ।

(२०६)

सा माता नहि राक्षसी निजसुतामांसाभिलाषायुता ।
तातोप्येष न किन्तु निष्ठुरमना दैत्योऽगजाघातकः ॥
नैते वास्तवबन्धवश्च भगिनीरक्तार्थिनो वायसाः ।
पुत्रीं वा भगिनीं धनार्जनकृते विक्रेतुमिच्छन्ति ये ॥

माता नहीं राक्षसी है वह, निर्दय सुतामांस इच्छुक ।
पिता नहीं, है दैत्य अरे वह, निष्ठुर सुता मांस भक्षक ॥
बंधु नहीं है निंद्य काक वह, बहिन रक्त पीने वाला ।
मनुज नहीं है सुता बहिन को, बेच द्रव्य खाने वाला ॥

कन्या की विनय ।

(२०७)

हे तातार्पय भक्षयामि गरलं यद्वा शिरश्छिन्धि मे ।
कूपे पातय मां सहे तदखिलं वृद्धाय नो देहि माम् ॥
सोढुं वृद्धविवाहदुःखकणिकां शक्ष्यामि नातः पित-
र्नो चेत् प्रेम तदाल्पयापि दयया मां पश्य तेऽहं सुता ॥

मुझे दीजिए विष का प्याला, छुरी शीष पर रख दीजे ।
डाल दीजिए मुझे कूप में, व्याह वृद्ध से मत कीजे ॥
दुःख व्याह का सहन न होगा, मृत्यु व्यथा मैं सह लूँगी ।
यदि किंचित् भी दया नहीं तो, प्राण स्वयं मैं तजदूँगी ॥

(२०८)

मां विक्रीय धनी भविष्यसि किमु त्वं तात! यत्नं विना ।
जातः क्वापि विलोकितोऽत्र धनवान्किं कन्यकाविक्रयात् ॥
अन्याय्यं भुवि मन्यते महदिदं तादृग्धनस्य स्थिति-
रुत्कृष्टा दशवार्षिकी निगदिता नीत्यर्थशास्त्रे बुधैः ॥

मुझे वेचकर यत्न विना ही, धनी आप वन जायेंगे !
सुता वेच जो धनी वने हैं, दृष्टि उधर क्या लायेंगे ॥
धन अनीतिका कठिनाई से, दश वर्षों तक रह पाता।
दश वर्षों के वाद नष्ट हो, मूल साथ में ले जाता ॥

(२०९)

कर्त्तव्यं यदि वेत्सि किञ्चिदपि वा प्रेम्णः शुभं लक्षणं ।
मानुष्योचितसद्गुणं स्वहृदये धर्तुं निजश्रेयसे ॥
स्प्रष्टुं चेत्पितृधर्मलेशमपि वा यद्यस्ति वाञ्छा तव ।
नो चिन्त्यः क्षणिकार्थसाधनकृते स्वप्नेऽपि मद्विक्रयः ॥

यदि कुछ भी कर्तव्य ज्ञान है, यदि कुछ निज कन्या से प्रेम।
मानव गुण कुछ भरे हृदय में, पिता चाहते अपना क्षेम ॥
पिता धर्म पालन करने में, थोड़ा सा भी है उत्साह।
मुझे वेचकर नश्वर धन की, तो न स्वप्न में रखिए चाह ॥

नवम परिच्छेद (पुरुषों के धर्म)

द्रव्य की आवश्यक्ता और उद्योग।

(२१०)

सन्तोषे परमं सुखं यदुदितं तत्त्यानिलक्ष्मीवतो-
र्नोवृत्यर्थमितस्ततो विचरतां नृणां वुभुक्षावताम् ॥
निर्वाहाय कुटुम्बिनां सुगृहिणां द्रव्यं किलावश्यकं।
योग्यं नोद्यममन्तरा सहजतस्तल्लभ्यते प्रायशः ॥

है संतोप परम सुख जग में, त्यागी धनवानों के हित।
पर जो इधर उधर फिरते हैं, मारे मारे उदर निमित ॥
निज गृह के पालन हित, आवश्यक है उन्हें द्रव्य पर्याप्त।
वह श्रम से उद्योग, कला से, सहज रूप में होता प्राप्त ॥

उद्योग कैसा होना चाहिए।

(२११)

नावद्यं प्रचुरं न चापि भवति प्रायः परेषां क्षति-
र्यत्र स्वल्पपरिश्रमेऽपि वहुलो लाभः समासाद्यते ॥
उद्योगश्च तथाविधस्सुखकरो नैश्चिन्त्यसम्पादकः।
संशोध्यो गृहिणा शुभाशयवता बुद्ध्या दृशा दीर्घया ॥

धर्म, नीति का नाश नहीं हो, परको हानि न हो किंचित्।
स्वल्प परिश्रम से होता हो, जिसके द्वारा लाभ अमित ॥
दीर्घ दृष्टि से, सूक्ष्म बुद्धि से, ऐसा शुभ उद्योग महान।
संपादित करना सदैव ही, हो जो सुख कर नीति निधान ॥

नीति।

(२१२)

नीतिर्यत्र सुरक्षिता परमया संशुद्धया निष्ठया ।
वृद्धिर्वा विजयः फलश्च विपुलं तत्रोद्यमे जायते ॥
नीतिर्नास्ति यदुद्यमे सफलता स्थायी च वित्तागमो ।
न स्याद्विश्वसनीयता सुवणिजां रक्ष्या च नीतिस्ततः ॥

रखते हैं जो नीति सुरक्षित, शुद्ध हृदय हैं निष्ठावान ।
उनको हीं उद्यम से मिलती, विजय सफलता सिद्धि महान
जिस उद्यम में नीति नहीं है, कठिन सफलता का मिलना।
रहता है विश्वास न उनका, सदा नीति रक्षित रखना ॥

नीति का परिणाम।

(२१३)

नीतिर्यत्र कुलेऽस्ति तत्र कलहोऽशान्तिश्च नो विद्यते ।
यद्देशेऽस्ति नयः समृद्धिरतुला तत्र स्थिरं तिष्ठति ॥
यद्राज्येऽस्ति नयादरो दृढतरा तस्योन्नतिर्जायते ।
नीतिर्यन्मनुजेऽस्ति सुन्दरतरं तज्जीवनं राजते ॥

जिस कुल में है नीति वहाँ, है शांति, न रहता क्लेश अहित ।
जिन देशों में नीति वहाँ, रहता वैभव स्थिर अतुलित ॥
जिन राज्यों में नीति, वहाँ, होती है राज्यवृद्धि दृढ़तर ।
जिन मनुजों में नीति, उन्हीं का, है जीवन विजयी सुखकर ॥

नीति ही उद्योग का भूषण है।

(२१४)

राज्यं भूपतिमन्तरा क्षितिपतिः प्रीतां प्रजामन्तरा।
गेहं वा गृहिणीं विना च गृहिणी कान्तं प्रसन्नं विना॥
जीवो ज्ञानमृते विभाति न यथा देहो विना चेतना-
मेवं भाति विनोद्यमं न मनुजो नीतिं विना चोद्यमः॥

उत्तम राजा शून्य राज्य ज्यों, प्रजा राज्य की भक्ति रहित।
गृहिणी रहित गेह है जैसे, गृहिणी स्वपति प्रेम वंचित॥
बुद्धि, ज्ञान से रहित जीव ज्यों, चेतन रहित देह निष्फल।
ज्यों उद्योग रहित मानव, त्यों, नीति रहित उद्योग विफल॥

सत्य नीति, और वर्तमान स्थिति।

(२१५)

सत्यं यत्र विराजते समुचितं तत्रैव नीतिस्थिति-
र्नीतिर्यत्र समुन्नतिः समधिका तत्रैव सञ्जायते॥
हा हा भारतमण्डले सपदि चेत्सूक्ष्मेक्षयाऽवेक्ष्यते।
प्रायोऽसत्यभयेन दृष्टिपदवीं नायाति सत्यं क्वचित्॥

सत्य जहां पर होता है, रहती है वहां नीति स्थिति।
जहाँ नीति होती है उत्तम, रहती वहाँ पूर्ण उन्नति॥
सूक्ष्म दृष्टि से लखने पर हा! इस पुनीत भारत में आज।
नहीं सत्य का दर्शन होता, घर घर रहा असत्य विराज॥

न्यायालय और असत्य ।

(२१६)

सत्यासत्यविनिर्णयाय रचिते न्यायालये साम्प्रतं ।
किं सत्यस्य समादरो ? नहि नहि प्रायोऽस्ति तत्रानृतम् ॥
विक्रीणन्ति मतं स्वकीयमनघं न्यायश्च सत्याङ्कितं ।
स्वार्थं साधयितुं प्रधानपुरुषा न्यायासने संस्थिताः ॥

सत्य, असत्य न्याय के हित ही, होते हैं जो न्यायालय ।
क्या है वहाँ सत्य का आदर, सदा असत की होती जय ॥
वैठ न्याय आसन पर, करते न्यायाधीश स्वार्थ साधन ।
लालच के वश सत्य न्याय का, गला घोटते हैं निशदिन ॥

वकील, वैरिष्टर और असत्य ।

(२१७)

ये वेरिस्टर इत्युपाधिविदिताः ख्याता वकीलेति च ।
गण्यन्ते निपुणाः प्रधानपुरुषा राजप्रजासत्कृताः ॥
निघ्नन्ति प्रतिपक्षिसत्यमनृतं स्वीयञ्च रक्षन्ति ते ।
प्रायो वञ्चयितुं परं रचितया युक्त्या यतन्ते परम् ॥

जो मानव वकील, वैरिष्टर, पद से रहते हैं भूषित ।
निपुण कहाते, आदर पाते, राजा और प्रजा में नित ॥
ले असत्य का पक्ष उसी की, नाना विधि रक्षा करते ।
तर्क जाल रच, सत्य पक्ष को, झूठा करके ही रहते ॥

व्यापारियों की वृत्ति।

(२१८)

ये शाहेत्युपनामधारिवणिजः पश्याम तेषां कृतिं।
भाषन्ते मधुरां गिरं स्वहृदये धृत्वापि हालाहलम्॥
दत्त्वा पूगफलादिकं रुचिकरं विश्वासयन्त्यग्रतो।
हीनं दीनजनाय वस्तु ददते गृह्णन्ति युक्त्याधिकम्॥

शाह नाम धारी वैश्यों की, करतूतें भी लखो ज़रा।
कहते मधुर वचन ऊपर से, हृदय हलाहल ज़हर भरा॥
देकर पान सुपारी रुचिकर, बैठा कर अपना विश्वास।
अधिक मूल्य में, अल्प वस्तु दे, करते दीनों का धन नाश॥

(२१९)

न्यूनान्न्यूनतरं वदन्ति दशधा शप्त्वापि मूल्यञ्च य-
न्नूनं स्यान्नहि वास्तवं तदपि हा किञ्चिद्विशेषं भवेत्॥
एकं वस्तु च दर्शयन्ति ददते चान्यत्ततो मिश्रितं।
प्रान्ते सङ्कलनादिलेखनविधौ विज्ञापयन्त्यन्यथा॥

दिखला कर कुछ वस्तु बदल कर, वस्तु अन्य ही दे देते।
कहते हैं वह अल्प मूल्य, पर; मूल्य अधिक ही ले लेते॥
वस्तु तोलने में हाथों की, चतुराई रखते अनमोल।
अधिक तोल लेते हैं परका. अपना देते हैं कम तोल॥

(२२०)

अस्त्येषां किल कापि हस्तलघुता पाय्ये तुलायां तथा ।
हीनं विक्रयणे क्रयेऽधिकतरं मस्थं भवेत्पादतः ॥
काप्यालापनपद्धतिर्वशकरी सम्मोहिनी रञ्जिनी ।
पश्यन्तोऽपि यतः प्रतारितजना जानन्ति नो वञ्चनाम् ॥

बारह गुना मूल्य कहकर, थोड़ा थोड़ा फिर कम कहकर ।
करके फिर दश बार उसे कम, अधिक दाम ही लेते फिर ॥
कर लेते परका मन वश में, कह कर मोहक मिष्ट वचन ।
नित्य ठगाये जाने पर भी, रहते हैं नर सदा प्रसन्न ॥

कारीगरों की कुटिलता ।

(२२१)

अन्तस्तुच्छतरं बहिश्च रुचिरं शोभास्पदं सर्वथा ।
प्रत्येकं किल शिल्पवस्तु शिथिलं निर्मीयते शिल्पिभिः ॥
नातिस्थायि न चाल्पमूल्यमपि तद्भेदे समासाद्यते ।
तस्मात्कारुजनोऽप्यसत्यबहुलः सर्वत्र संदृश्यते ॥

भीतर तुच्छ वस्तु होती है, बाहिर शोभावान रुचिर ।
हलकी, शीघ्र टूटने वाली, वस्तु बनाते कारीगर ॥
अधिक मूल्य लेकर देते, कच्ची, कमजोर वस्तुएं नित ।
इस प्रकार से कलाकार भी, रहते हैं असत्य में रत ॥

(२२२)

शिल्पिश्रेणिषु यद्यसत्यचरणं तस्मान्न सञ्जायते ।
हानिः केवलमत्र धर्मनययोर्मायाविनां शिल्पिनाम् ॥
किन्तु स्यान्महती क्षतिर्भुवि नृणां नूनं परेषामपि ।
यस्माज्जीवनसाधनानि बहुशस्तत्कृत्यधीनानि वै ॥

कपट भरे असत्य कार्यों से, धर्म नीति का घटता बल ।
उसके द्वारा शिल्पी गण की, होती नहीं हानि केवल ॥
किन्तु देश के अन्यनरों की, नित भारी क्षति होती है ।
जीवन साधन क्षय होते हैं, कला धूल में मिलती है ॥

त्यागी समाज में भी असत्य का प्रवेश ।

(२२३)

जातस्वस्खलनापलापनपरासद्दोषसम्भाषणा-
त्मीयोत्कर्षपरापकर्षकथनासूयास्वरूपेण वा ॥
हिंसादम्भकदाग्रहादिविधया रेऽसत्य ! पापाग्रणि ! ।
सद्यस्त्यागिगणेऽप्यनेकविधिना ज़ातास्ति ते सत्क्रिया ॥

निज दोषों को सदा छिपाना, पर को दोष लगा देना ।
अनुचित आत्म प्रशंसा करना, पर की नित निंदा करना ॥
हिंसा, दंभ, दुराग्रह द्वारा, करना निज पाखंड प्रचार ।
किया त्यागियों ने असत्य का, इस प्रकार से अति सत्कार ॥

असत्य का परिणाम ।

(२२४)

भूपे तत्पुरुषेषु वा स्थितमिदं कुर्यात्प्रजापीडनं ।
धर्मज्ञातिसभाजनायकगतं हन्याज्जनानां हितम् ॥
स्यादेतद्वणिगाश्रितं यदि तदाऽनीतेः प्रचारो भवेद् ।
वित्तप्राणहरं भवेद्भिषजि चेदेवं महानर्थकम् ॥

राजा राज्य पुरुष में। हो तो, होता सदा प्रजा को कष्ट ।
धर्म जाति नेता में हो तो, होता है सदैव हित नष्ट ॥
व्यापारीगण में यदि हो तो, होता सदा अनीति प्रचार ।
वैद्यों में यदि हो असत्य तो, हर लेता जीवन धन सार ॥

लोग असत्य को क्यों सेवन करते हैं ।

(२२५)

नासत्यं व्यवसायवृद्धिजनकं नो कीर्तिविस्तारकं ।
नो माहात्म्यसमर्पकं नहि पुनः शान्तिप्रतिष्ठाकरम् ॥
किन्त्वेतल्लघुताकरं भयप्रदं मानप्रतिष्ठाहरं ।
नो जाने मनुजैस्तथापि सततं प्रीत्या कथं सेव्यते ॥

नहीं वृद्धि होवी वाणिज में, होता नहीं कीर्ति विस्तार ।
गौरव महिमा तनिक न बढ़ती, बहती नहीं शांति की धार ॥
लघुता मिलती, भय जगता है, मान प्रतिष्ठा होती नष्ट ।
सेवन करते क्यों असत्य का, पाते हैं जिससे नर कष्ट ॥

क्या यह समय असत्य का है।

(२२६)

प्रायोयं समयोऽस्त्य सत्य सचिवो यस्माच्च सत्याश्रयी।
वृत्ति नो लभते कथंचिदनृती प्राप्नोत्यनल्पं धनम् ॥
इत्थं केचन मन्वते भवतु चेदापाततस्तत्तथा।
तथ्येस्त्येव च वस्तुतस्तु विजयोऽसत्यार्जितं न स्थिरम् ॥

आज सत्य की विजय न होती, पाता है असत्य आदर।
झूठे मानव माल उड़ाते, भूखों मरते सच्चे नर ॥
उनका कहना उचित नहीं है, जो ऐसा कहते हैं नर।
क्षणिक विजय होती असत्य की, पाता सत्य विजय स्थिर ॥

असत्य के भेद।

(२२७)

चित्तेन्यद्वचनेन्यदस्ति च तथा कार्ये ततो भिन्नता।
स्पष्टोयं कपटोप्यसत्यसचिवस्तावज्जगद्दुःखदः ॥
प्रोक्तस्याननुपालनं प्रतिपलं वाचः परावर्तनं।
सर्वञ्चैवमसत्यकोटिघटितं व्यर्थं महानर्थदम् ॥

मन में हो उसे न कहना, कह कर भिन्न कार्य करना।
कपट भावना मन में रखना, खोटे कटुक शब्द कहना ॥
नहीं वचन का पालन करना, बात बदलना, करना मान।
हैं असत्य के भेद सभी ये, करते सदा अनर्थ महान् ॥

सत्य की आवश्यकता ।

(२२८)

सत्यं केवलमत्र भूषणमिदं नो सज्जनानां शुभं ।
किन्तूत्कृष्टपदप्रदं वरतरं प्रत्येकमप्यङ्गिनाम् ॥
नीतेर्मूलमनुत्तमं शुभतरं श्रेयोर्थिनां जीवनं ।
विश्वासायतनं विशिष्टसुखदं सौजन्यसम्पादकम् ॥

केवल मात्र सज्जनों का ही, है न सत्य शुभ आभूषण ।
किन्तु उच्च पद देने वाला, सारे जग का है भूषण ॥
सत्य न्याय की उत्तम जड़, करता जीवन का कल्याण ।
है विश्वास सदन, सुखकारी, देता अक्षय पद निर्वाण ॥

सर्वत्र सत्य की ही चाह है ।

(२२९)

मिथ्यावादिजना अपीतरजने वाञ्छन्ति सत्यं यदा ।
न्यक्कुर्वन्त्यनृतप्रियं मनसि ते नो विश्वसन्ति क्वचित् ॥
स्वं प्रामाणिकवर्गनायकतया प्रख्यापयन्ति ध्रुवं ।
तस्मादत्र हि सत्यमेव सुतरां सर्वैश्च संस्तूयते ॥

मिथ्याभाषी मानव भी तो, सदा सत्य की रखते आश ।
वह भी मिथ्याभाषी नर का, करते हैं न कभी विश्वास ॥
अपने सत्य प्रमाणपने को, करते हैं जग में प्रगट अहा ।
स्तुति करते सभी सत्य की, सर्व श्रेष्ठ गुण सत्य महा ॥

सत्य में निर्भयता

(२३०)

सत्य त्वं श्रयसे यदीयहृदयं कौटिल्यदम्भोज्झितं ।
तस्य क्वापि भयं न चास्ति नितरां राजाधिकार्यादिषु ॥
किं कुर्वन्ति च शासनानि नृपतेर्नैष्ठुर्ययुक्तान्यपि ।
भो भो किं बहुना ? यमादपि मनाग् नो तन्मनः कम्पते ॥

दंभ कुटिलता रहित सत्य तू, जिसके हृदय वास करता ।
उसके मन में नहीं किसी का, तीन लोक में भय रहता ॥
निष्ठुर कुटिल राज्य शासन, उसको न हानि पहुँचा सकता ।
नहीं सत्यवादी यम सम्मुख, निज मन को कंपित करता ॥

सत्य की महिमा ।

(२३१)

सत्य ! त्वं निखिलं धरातलमिदं व्याप्य स्वयं वर्तसे ।
योग्यायोग्यहिताहितादियुगलं व्यक्तं पृथक् दर्शयत् ॥
स्वर्गान्ते प्रसृतो दिगन्तविततस्ते गुप्तदिव्यध्वनि-
र्लोकान्प्रेरयति प्रकर्षपदवीं कुर्वन्व्यवस्थां शुभाम् ॥

अरे सत्य ! तेरा प्रकाश, फैला है पूर्ण धरातल पर ।
योग्य अयोग्य हिताहित को, तू ही दिखलाता है सुखकर ॥
स्वर्ग लोक तक फैली तेरी, गुप्त दिव्य ध्वनि अहो महान् ।
उन्नत पथ पर खींच जगत् को, करता है तू शुभ उत्थान ॥

उपसंहार। (२३२)

औदार्यञ्च गुणज्ञतां सुजनतां सम्पाद्य मैत्र्यादिकं।
वात्सल्यञ्च समानभावसहितं कर्तुं कुटुम्बोदयम् ॥
अत्यावश्यकवित्तसंग्रहकृते नोल्लङ्घते यो नयं।
निश्चिन्तः स परार्थधर्मपदवीं गन्तु समर्थो भवेत् ॥

सज्जनता उदारता मैत्री, रख गुणज्ञता भाव महान।
सब जीवों पर रखता है जो, वात्सल्य का भाव समान ॥
धन संचय करता कुटुम्ब हित, नीति न उलंघन करता।
धर्म और परमार्थ मार्ग में, वह नर शक्तिमान होता ॥

ग्रन्थ रचना समय निर्देश।

(२३३)

शुक्लश्रावणपञ्चमीगुरुदिने ख्याऽध्यङ्कभूवत्सरे। (० ७ ९ १)
श्रीमद्वीरगुलाबचन्द्रकृपया श्रीरत्नचन्द्रेण सा ॥
प्रख्याते निरमायि पालनपुराख्ये पत्तने प्रेमतः।
कर्तव्यार्थविकाशिनी कृतिरियं भद्राय भव्याङ्गिनाम् ॥

श्रावण शुक्ल पञ्चमी शुभ दिन, शून्य, सप्त, नव, इक संवत्।
मुनीन्द्र शिष्य गुलाबचन्द्र के, रत्नचन्द्र मुनि ने जग हित ॥
पालनपुर में किया पूर्ण, कर्त्तव्य-कौमुदी ग्रन्थ महान।
शुभ कर्तव्य प्रकाश भव्य, जनों के लिए सदा सुखदान ॥

❀ इति कर्त्तव्य कौमुदी प्रथम भागः ❀

शुद्धीपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	ज़ीवन	जीवन
२	३	श्रम	श्रमः
५	१३	विद्यार्थिंनः	विद्यार्थिनः
८	३	रतो	पुरतो
७	११	विधौ	विधौ
११	१६	ऊत्तम	उत्तम
१२	१३	चिद्वत्ति	चिद्वृत्ति
१३	१९	हा	हो
२२	७	स्थैर्थस्यापि	स्थैर्यस्यापि
२२	१२	कूरता	क्रूरता
२३	८	सद्माव	सद्भाव
२०	५	सुमुचितं	समुचितं
३०	१५	पृथ्वो के	पृथ्वी का
३७	५	पाषणकृत्य-	पोषणकृत्य-
३८	५	बा	वा
४०	३	यन्यन्त	मन्यन्त
४०	४	विम्राथि-	विद्यार्थि-
४४	५	राग	रोग
४८	२	दु:साधा-	दु:साध्या
५३	४	सम्पदमू	सम्पदम्
५३	१६	धम	धर्म
५५	१६	वीपन	विपिन
५५	१८	द्यत	द्यंत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८	२	नृभ्या	नृभ्यो
५८	१८	मयादा	मर्यादा
५९	१	दुदशा	दुदशा
६१	१७	स्वाथ्य	स्वास्थ्य
६२	१८	भातृवधू	भ्रातृवधू
६३	८	पड़ी	पड़ी
६४	१३	वद्भूधनं	वहुधनं
६६	२	भारोत्कट	भारोत्कट
६६	१७	व्यक्त	त्यक्त
६७	११	समये	समयं
७८	४	यवं	यैवं
७८	१५	ग्रेह	गेह
७९	१	,,	,,
८९	११	द्रष्ट्वा	दृष्ट्वा
[illegible]०	३	तद	तद्
[illegible]	६	का	को
९०	११	तद्येपास्ति	यद्येपास्ति
९०	११	सहिश्णुता	सहिष्णुता
१०३	१५	घन	धन
१०३	१७	कगीचे	वगीचे
१०४	१५	ज्याला	प्याला
१०६	३	तत्त्यानि	तत्त्यागि

श्री जैन साहित्य प्रचारक समिति के स्तम्भ और आजीवन सदस्यों की

शुभ नामावली

स्तम्भ

१	अगरचन्द भैरोंदानजी सेठिया	बीकानेर
२	लाला केदारनाथजी रुगनाथजी जैन, रोहतक वाले,	दिल्ली

आजीवन सदस्य

१	चुन्नीलाल भाईचन्द मेहता	बम्बई
२	तखतसिंहजी बोहरा	आगरा
३	लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद	कलकत्ता
४	चुन्नीलाल फूलचन्द दोशी	मोरवी
५	मुंशीलाल जैन	स्यालकोट
६	जोहरीलालजी पन्नालालजी नाहर	अजमेर
७	घेवरचन्दजी चोपड़ा	"
८	रंगरूपमलजी श्रीमाल	"
९	दीपचन्दजी पल्लीवाल जैन	"
१०	भँवरलालजी चांदमलजी नाहर	"
११	मूलचन्दजी सेठी	"